अमृत द्वार

अनुक्रम

1. धर्म है वैयक्तिक अनुभूति...2
2. विश्वास नहीं, विचार..14
3. ज्ञान नहीं, विस्मय..28
4. अपने स्वधर्म की खोज..39
5. दुख नहीं, आनंद..54

अमृत द्वार
पहला प्रवचन

धर्म है वैयक्तिक अनुभूति

एक अमावस की रात्रि थी और एक व्यक्ति मधुशाला गया। जाते समय उसने सोचा कि रात जब लौटूंगा अंधेरा बहुत हो जाएगा और फिर मैं नशे में भी होऊंगा साथ में लालटेन लेता चलूं। वह लालटेन लेकर मधुशाला गया। फिर उसने वहां शराब पी और आधी रात बीते वह अपने घर की तरफ वापस लौटा। चलते वक्त उसने लालटेन उठा ली और घर की तरफ चला। लेकिन रास्ते पर जगह-जगह खड़े हुए जानवरों से, मकानों से, रास्ते पर गुजरते लोगों से उसकी टक्कर होने लगी। वह बार-बार अपनी लालटेन उठा कर देखने लगा और पूछने लगा अपने मन में कि आज लालटेन को क्या हो गया है? प्रकाश नहीं मालूम होता? रास्ता बड़ा अंधेरा मालूम पड़ता है, लालटेन कुछ प्रकाश नहीं देती। फिर आखिर में वह एक दीवाल से टकरा कर नाली में गिर पड़ा। उसने गुस्से से लालटेन पटक दी और उसने कहा कि ठीक ही कहते थे पुराने लोग कि कलयुग आएगा, जब प्रकाश भी फिर प्रकाश नहीं देगा। यह लालटेन भी कलयुगी मालूम पड़ती है।
फिर सुबह उसे बेहोश हालत में ही घर उठा कर पहुंचाया गया। दोपहर मधुशाला के मालिक ने एक नौकर भेजा और उसके साथ एक चिट्ठी भेजी। उस चिट्ठी को उसने जाकर उस रात शराब पीए आदमी को दी। उस चिट्ठी में मधुशाला के मालिक ने लिखा थाः मेरे मित्र, रात तुम भूल से अपनी लालटेन की जगह मेरे तोते का पिंजरा उठा कर ले गए। मैं लालटेन वापस भेज रहा हूं, कृपा करके मेरा तोते का पिंजरा तुम वापस लौटा देना। तब उसने पीछे जाकर देखा, वह रात तोते का पिंजरा ले आया था।
अब तोते के पिंजड़ों से प्रकाश नहीं निकलता। लेकिन बेहोश आदमी को यह
ही पता नहीं चलता है कि क्या लालटेन है, क्या तोते का पिंजरा है।
आज तक आदमी धर्म के नाम पर तोतों के पिंजरे पकड़े रहा है, इसलिए धार्मिक दुनिया पैदा नहीं हो सकी और आदमी का परिवर्तन नहीं हो सका। धर्म के नाम पर हम तोतों के पिंजरे पकड़े हुए हैं, प्रकाशित दीये नहीं। इस बात में कि पूरब के लोग धार्मिक थे, या भारत के लोग आध्यात्मिक थे, यह बात सरासर झूठी है। अब तक कोई जमीन पर कोई मुल्क आध्यात्मिक नहीं रहा है। इस झूठी बात के कारण हमको यह भ्रम पैदा होता है कि हम अध्यात्मिक थे, फिर भी हम शांत नहीं हो सके। और तब इसका अंत परिणाम यह होगा कि अगर इतने आध्यात्मिक होने के बाद भी शांत नहीं हो सके, तो इसका मतलब साफ है कि सारी दुनिया कितनी भी आध्यात्मिक हो जाए शांत नहीं हो सकेगी।
पहली बात, हम आध्यात्मिक कभी हुए ही नहीं। इसलिए दूसरा निष्कर्ष निकालने की कोई भी जरूरत नहीं है। पहले इस पर ही विचार कर लें कि हम कैसे आध्यात्मिक हैं? क्या आध्यात्म की बातें करने से कोई आध्यात्मिक हो जाता है? तब तो तोते भी उपनिषद के वचन बोल लेंगे और रामायण की पंक्तियां दोहरा लेंगे और आध्यात्मिक हो जाएंगे। आध्यात्मिक शब्दों और बातों को दोहरा लेने से कोई आध्यात्मिक नहीं हो जाता है। बल्कि सच्चाई यह है कि जो लोग आध्यात्मिक नहीं होते हैं, वे भी इन शब्दों को दोहरा कर तृप्ति कर लेते हैं। इधर तीन हजार वर्षों से हमारे देश को यह बुनियादी भ्रम रहा है, और उस भ्रम के कारण हम रोज-रोज पतित होते गए हैं। यह पतन आध्यात्म के कारण नहीं हुआ है, यह पतन आध्यात्मिक होने के भ्रम के कारण हुआ है। अगर एक अंधे आदमी को यह ख्याल पैदा हो जाए कि मेरे पास आंखे हैं, तो उस अंधे की क्या हालत होगी? वह जगह-जगह खड्डों में गिरने लगेगा। और तब वह कहेगा कि बड़ा कंट्राडिक्शन मालूम होता है। मेरे पास आंखें हैं फिर मैं गड्ढों में क्यों गिरता हूं? और तब वह यह कहेगा कि फिर निश्चित है दुनिया में आदमी हमेशा गड्ढों में गिरते रहेंगे। क्योंकि आंखों के होने से गड्ढों में गिरने से कोई रुकावट नहीं पड़ती। लेकिन उस आदमी को जानना चाहिए जो गड्ढों में गिर रहा है, उसके पास आंखें नहीं होंगी। आंखों के होते हुए गड्ढों में गिरने का कोई कारण नहीं है। गड्ढों में गिरना और आंखों का न होना एक ही अर्थ रखता है।

एक बीमार आदमी को यह ख्याल पैदा हो जाए कि मैं स्वस्थ हूं, तो फिर उसका उपचार भी नहीं हो सकेगा। एक मरे हुए आदमी को यह ख्याल हो जाए कि मैं जिंदा हूं तो बात खत्म हो गई। भारत को... भारत के पतन में जो सबसे बड़ी बात काम करती रही है वह यह भ्रम कि हम आध्यात्मिक हैं। यह भ्रम कैसे पैदा हो गया? इस भ्रम के पैदा हो जाने के कुछ कारण हैं। पहली बात, दुनिया में अभी हम सारे लोग हैं, दो हजार साल बाद हममें से शायद किसी का भी नाम स्मरण में नहीं रह जाएगा, लेकिन गांधी का नाम स्मरण में रह जाएगा। दो हजार साल बाद लोग सोचेंगे कि गांधी के जमाने के लोग कितने धार्मिक थे! वे गांधी के हिसाब से सारी दुनिया के बाबत विचार करेंगे। और गांधी बिल्कुल अपवाद थे, एक्सेप्शन थे। गांधी नियम नहीं हैं। गांधी हम सबके प्रतिनिधि नहीं थे। गांधी हम सबसे उलटे और विरोधी थे। लेकिन दो हजार साल बाद हम, जो कि प्रतिनिधि हैं असली आदमी हैं, ये भूल जाएंगे, और गांधी जो बिल्कुल अकेले हैं वे याद रह जाएंगे। और दो हजार साल बाद लोग कहेंगे गांधी के जमाने के लोग कितने अच्छे थे! यह बात बिल्कुल झूठी होगी। गोडसे तो हमारा प्रतिनिधि हो भी सकता है, गांधी हमारे प्रतिनिधि बिल्कुल नहीं हैं। अब हम पीछे की तरफ सोचते हैंः बुद्ध के जमाने के लोग बड़े अच्छे थे, क्योंकि बुद्ध हमें याद हैं, बुद्ध बिल्कुल अकेले आदमी हैं, वे जमाने के प्रतिनिधि नहीं हैं। महावीर हमें याद हैं, क्राइस्ट हमें याद हैं, सुकरात हमें याद है, कृष्ण और राम हमें याद हैं। उनके आधार पर हम सोचते हैं कि उसजमाने के लोग कितने धार्मिक और कितने आध्यात्मिक थे। यह सारा तर्क अत्यंत मिथ्या और झूठ है। यह एक आदमी के आधार पर सभी लोगों का निर्णय लेना है। यह बिल्कुल गलत है। सच्चाई इससे उलटी है। सच्चाई यह है कि बुद्ध अपने जमाने के प्रतिनिधि नहीं थे। अन्यथा बुद्ध किन लोगों को समझा रहे थे कि चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, झूठ मत बोलो, हिंसा मत करो, क्रोध मत करो? बुद्ध किसको समझा रहे थे, ये बातें? या तो बुद्ध पागल थे, लोग आध्यात्मिक थे, और बुद्ध समझा रहे थे कि चोरी मत करो। बुद्ध की शिक्षाएं किसके लिए थीं अगर चोर नहीं थे तो? अगर बेईमान नहीं थे, अगर धोखेबाज लोग नहीं थे। किसको समझा रहे थे बुद्ध? क्राइस्ट किसको समझा रहे थे कि प्रेम करो? किसको समझा रहे थे कि एक चांटा कोई मारे तुम्हारे गाल पर तो दूसरा उसके सामने कर देना? आध्यात्मिक लोगों को? ये बातें उन लोगों को समझाई जा रही थीं जो मानते थे कि कोई एक आंख तुम्हारी निकाले तो तुम दोनों आंखें उसकी निकाल लेना। ये लोग आध्यात्मिक नहीं थे। पृथ्वी पर आज तक कोई कौम, कोई समाज, कोई राष्ट्र आध्यात्मिक नहीं रहा है। लेकिन इन लोगों के आधार पर एक भ्रम पैदा होता है कि पिछले जमाने बहुत आध्यात्मिक थे।
मैंने बहुत खोज की कि कोई ऐसी किताब मिल जाए जो यह कहती हो कि हमारे जमाने के लोग आध्यात्मिक थे। ऐसी किताब मुझे नहीं मिल सकी। दुनिया की सबसे पुरानी किताब चीन में उपलब्ध है जो कोई छह हजार वर्ष पुरानी होगी। उस किताब की भूमिका में लिखा हुआ है कि आज कल के लोग बहुत पतित हो गए हैं पहले के लोग बहुत अच्छे थे। ये पहले के लोग कब थे? ये पहले के लोग कभी थे? या यह मिथ है? या यह केवल कल्पना है। हर किताब कहती है कि पहले के लोग अच्छे थे। हर उपदेशक कहता है पहले के लोग अच्छे थे। अतीत अच्छा था। यह हम मान लेते हैं। इससे एक कठिनाई, एक कंट्राडिक्शन, एक विरोधाभास खड़ा हो जाता है कि इतने दिनों तक हम आध्यात्मिक रहे और फिर हमारी यह स्थिति हो रही है! यह हमारा पतन फिर समझाना बहुत कठिन हो जाता है। तब फिर एक ही रास्ता रह जाता है, या तो हम कलयुग के ऊपर दोष थोप दें कि यह युग ही खराब है। लेकिन यह बड़ी बचकानी दलील है, समय खराब नहीं होता न अच्छा होता है। युग खराब नहीं होते हैं। तब फिर दूसरा रास्ता यह है कि हम पश्चिम के भौतिकवाद के ऊपर सारा दोष थोप दें। कम्युनिज्म के ऊपर, नास्तिकता के ऊपर, साइंस के ऊपर, मैटीरियलिज्म के ऊपर और पश्चिम के ऊपर सारा दोष थोप दें कि पश्चिम के भौतिकवादियों ने सब बरबाद कर दिया है। यह भी बड़ी कमजोर और बड़ी नपुंसक दलील है।
किसी घर का दीया बुझ जाए और घर में अंधेरा हो जाए। और घर के लोग बाहर जाकर कहने लगें कि हम क्या करें? अंधेरे ने आकर हमारे दीये को बुझा दिया

है। तो हम उस आदमी को कहेंगे कि तुम पागल हो गए हो। अंधेरे ने आज तक किसी के दीये को नहीं बुझाया। अंधेरा इतना कमजोर है कि वह दीये को कैसे बुझाएगा? दीया बुझ जाता है तो अंधेरा जरूर आ जाता है। लेकिन अंधेरा आकर कभी किसी के दीये को नहीं बुझा सकता।
भौतिकवाद अगर अध्यात्मवाद के दीये को बुझा दे तो दो कौड़ी का है वह अध्यात्मवाद। अगर विज्ञान की बातें अध्यात्म की बातों को बुझा दें तो दो कौ.ड़ी की हैं वे अध्यात्म की बातें। कमजोर हैं बहुत। उन्हें जीने का और बचे रहने का कोई हक भी नहीं है। लेकिन यह बात भी झूठ है। अध्यात्म का दिया जलता हो तो भौतिकवाद का अंधेरा प्रवेश भी नहीं करता है। लेकिन अध्यात्म का दीया ही न जल रहा हो, तो फिर भौतिकवाद का अंधेरा प्रवेश करता है। इसमें अंधेरे का कोई भी कसूर नहीं है। इसमें अंधेरे पर दोष देने की कोई भी जरूरत नहीं है। अंधेरे का कभी भी कोई कसूर नहीं रहा है।
मैंने सुना है कि एक बार अंधेरे ने जाकर भगवान से यह प्रार्थना की थी
कि सूरज मेरे पीछे बहुत बुरी तरह पड़ा हुआ है। सुबह से सांझ तक मुझे परेशान करता है। रात में मैं विश्राम भी नहीं कर पाता कि फिर सुबह से हाजिर हो जाता है। सोते से मुझे जगा देता है। फिर मेरा पीछा करता है। यह हजारों, लाखों वर्ष हो गए मैं परेशान हो गया हूं, मेरी कुछ समझ में नहीं आता। मैंने कभी कोई अहित किया हो सूरज का, इसका भी पता नहीं है। मेरे याद में भी नहीं है कि कभी कोई भूल-चूक मुझसे हुई हो। फिर भी सूरज मेरे पीछे... क्यों परेशान कर रहा है मुझे? भगवान ने सूरज को बुलाया और उससे कहा कि तुम अंधेरे के पीछे क्यों पड़े हो? क्यों उसे सता रहे हो? क्या उसने तुम्हारा बिगाड़ा है? सूरज ने कहाः अंधेरा? अंधेरे से मेरी कोई अब तक मुलाकात ही नहीं हुई। मैं उसे पहचानता भी नहीं हूं। बिगाड़ने न बिगाड़ने का सवाल नहीं, सताने न सताने का सवाल नहीं, मैं उसे जानता भी नहीं हूं। फिर भी आप कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे। अंधेरे को मेरे सामने बुला लें, तो मैं क्षमा मांग लूं। और उसे पहचान भी लूं, ताकि आगे मुझसे कोई भूल न हो सके।
इस बात को हुए भी लाखों वर्ष हो गए। वह मामला अभी भगवान की फाइल में ही पड़ा हुआ है। वह अंधेरे को अब तक सूरज के सामने नहीं ला सके हैं। वह ला भी नहीं सकेंगे कभी। क्योंकि अंधेरा केवल सूरज के अभाव का नाम है। वह केवल एब्सेंस है। वह किसी चीज की उपस्थिति नहीं है, वह किसी चीज की अनुपस्थित है। वह केवल प्रकाश का न होना है। तो प्रकाश के सामने ही प्रकाश की अनुपस्थिति को कैसे मौजूद किया जा सकता है? या तो मैं इस कमरे में हो सकता हूं या मेरी गैर-मौजूदगी हो सकती है। दोनों चीजें एक साथ नहीं हो सकती। तो अंधेरे को सूरज के सामने नहीं लाया जा सकेगा।
अध्यात्म के सामने कोई भौतिकवाद कभी नहीं आया और कभी नहीं आ सकता है। लेकिन अध्यात्म है ही नहीं। और तब हम सोचते हैं कि यह इतना विरोधाभास कैसे पैदा हो गया है? यह विरोधाभास हमारा तार्किक विरोधाभास है। जीवन की वस्तुस्थिति का विरोध नहीं है। यह हमारे सोचने की बुनियादी भूलों में से एक भूल है। यह बात ही गलत है कि अब तक कोई मुल्क धार्मिक हो गया है। इसलिए आदमी अशांत है, अशांत होगा। इसलिए आदमी बेचैन है, आदमी बेचैन होगा। इसलिए असंतोष है, असंतोष होगा। कुछ व्यक्ति जरूर आध्यात्मिक हुए हैं, और जो व्यक्ति आध्यात्मिक हो गए हैं, उनके जीवन में न असंतोष है, न अशांति है, न बेचैनी है।
समझ मेरी यह है कि जो एक व्यक्ति के जीवन में घटित हो सकता है, वह सबके जीवन में घटित हो सकता है। घटित नहीं हुआ है, लेकिन घटित हो सकता है। क्योंकि बुनियादी रूप से दो व्यक्तियों के बीच कोई भेद नहीं है। बुद्ध के और मेरे बीच, महावीर के और आपके बीच, क्राइस्ट के, कृष्ण के और किसी के, और किसी के बीच कोई बुनियादी भेद नहीं है। मनुष्यता एक बीज है, जो लोग उस बीज पर श्रम करते हैं, उनका बीज वृक्ष बन जाता है। उस वृक्ष से छाया उपलब्ध होती है, उस वृक्ष में फूल आते हैं और फल लगते हैं। लेकिन जो बीज बीज ही पड़े रह जाते हैं, बीज ही बने रह जाते हैं, उनको छाया नहीं उपलब्ध होती, नहीं फूल उपलब्ध होते, नहीं फल उपलब्ध होते। लेकिन इससे यह सोच लेने का कोई भी कारण नहीं है कि उन बीजों के भीतर भी उतनी सामर्थ्य नहीं है, जितनी दूसरे बीजों

के भीतर थी। प्रत्येक बीज वृक्ष बनने में समर्थ है। और प्रत्येक मनुष्य शांति को उपलब्ध करने में और प्रत्येक मनुष्य परमात्मा को उपलब्ध करने में। मनुष्य एक बीज है और परमात्मा उसका विकास है। और अगर एक मनुष्य भी उस अवस्था को उपलब्ध होता है, जिसे वह प्रभु प्राप्ति कहता है, मोक्ष कहता है, सत्य कहता है, निर्वाण कहता है, तो सभी मनुष्य हकदार हो जाते हैं, अधिकारी हो जाते हैं उस स्थिति को पाने के।
लेकिन यह नहीं हो सका है अब तक। यह बात बिल्कुल ही सच है। और जिन रास्तों का हमने अब तक प्रयोग किया है, अगर उन्हीं का आगे भी प्रयोग जारी रखते हैं, तो यह आगे भी नहीं हो सकेगा, यह भी सच है। अध्यात्म के नाम पर कुछ गलत दिशाएं प्रचलित रही हैं, इसलिए यह बात नहीं हो सकी है। ठीक अध्यात्म, ठीक वैज्ञानिक अध्यात्म नहीं पैदा हो सका है। जो पूरे लोक-लोकांतर को परिवर्तित कर सके, संपरिवर्तित कर सके, क्रांति दे सके। और इसमें सबसे बड़ी बाधा यही रही है कि जिनको भी यह ख्याल पैदा हो गया है कि हम आध्यात्मिक हैं, उन्हीं ने विकास को अवरुद्ध कर दिया है। उन्होंने चीजों को ठहरा दिया है।
मनुष्य को बहुत तरह के भ्रम हो सकते हैं। भ्रम बहुत आसान हैं। भ्रमों
को पाल लेना बहुत सरल भी है। सपने देखना बहुत सुविधापूर्ण भी है। फिर जो दरिद्र होते हैं वे रात सपने देखते हैं कि समृद्ध हो गए हैं। जो दिन में भीख मांगते हैं वे रात सपने देखते हैं कि वे सम्राट हो गए हैं। जीवन में बहुत बेचैनी है, बहुत दुख है, बहुत अशांति है। और इसलिए अध्यात्म के, और अध्यात्म की शांति के सपने देखना लोग शुरू कर देते हैं। लेकिन सपने सच्चाइयां नहीं हैं। और सपने देखने से जीवन की स्थितियां परिवर्तित नहीं होती हैं। और आदमी अब तक... वृहत समाज मनुष्य का सपने देखता रहा है। भगवान के नाम पर हमने बहुत सपने देखे, और उन सपनों को ही हमने धर्म समझ लिया है। सत्य के नाम पर हमने बहुत सपने देखे, और उन सपनों को ही हमने सत्य समझ लिया है। इसलिए हम ठहर गए हैं और रुक गए हैं। और मनुष्य-जाति का आगे कोई विकास दिखाई नहीं पड़ता है कि आगे कैसे विकास होगा? ऐसा लगता है कि शायद ऐसा ही होता रहेगा। लेकिन अनंत संभावनाएं हैं मनुष्य की। और जिनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।
कल रात ही मैं बात कर रहा था, एक बिशप था जर्मनी में, बिशप राइट। वह एक विश्वविद्यालय में प्रवचन करने गया था। वहां बोलते समय उसने कहा कि दुनिया का जितना विकास होना था, वह हो चुका है। अब कोई संभावना विकास की नहीं मालूम होती। आदमी करीब-करीब ऐसे ही जीए चला जाएगा। विज्ञान को जो खोजें करनी थीं, वे पूरी हो चुकी हैं। अब कुछ समझ में नहीं आता कि और खोज क्या हो सकती है? एक आदमी उस सभा में उठ कर खड़ा हो गया और उसने कहा कि ऐसा मत कहिए, बहुत बातें हो सकती हैं। क्योंकि आदमी के अतीत से आदमी का भविष्य बहुत बड़ा है। अतीत बहुत छोटा है, भविष्य बहुत बड़ा है। ऐसा मत कहिए कि अब कुछ भी नहीं हो सकता। उस बिशप ने टेबल ठोक कर कहा कि मैं कहता हूं अब कुछ भी नहीं हो सकता। तुम सुझाओ कि क्या हो सकता है? क्या संभव है? उस आदमी ने झिझकते हुए कहा, उसने कहा कि यह हो सकता है अभी आदमी आकाश में नहीं उड़ता कल आकाश में उड़ने लगे। तब तक हवाई जहाज नहीं बने थे। वह बिशप हंसने लगा और उसने कहाः पागल हो तुम। दस हजार साल से आदमी सपने देखता है आकाश में उड़ने के लेकिन कोई आदमी उड़ नहीं पाया अब तक। लोग कहानियां लिखते हैं आकाश में उड़ने की, लेकिन कोई आदमी उड़ नहीं पाया। कोई नहीं उड़ सकेगा। यह संभव नहीं है।
और आप हैरान होंगे, उसी बिशप के दो लड़कों ने पच्चीस साल बाद हवाई जहाज
का निर्माण किया। उसी बिशप के दो लड़कों ने। तो वह जिंदा था तब। उसने अपनी आत्म-कथा में लिखा कि मैं हैरान हो गया हूं, मुझे कल्पना भी नहीं थी कि मेरे ही दो लड़के राइट ब्रदर्स वह उसी बिशप राइट के लड़के थे दोनों। विल्वर और ओलिवर राइट दोनों उसी के लड़के थे। मेरे ही लड़के मेरे ही घर में पहला हवाई जहाज निर्माण कर लेंगे इसकी तो मैं कल्पना ही नहीं कर सकता था, क्योंकि मैं तो कहता था कि दुनिया में कोई भी नहीं कर सकेगा।

आदमी का भविष्य आदमी के अतीत से बहुत बड़ा है इसलिए निराश होने का कोई
भी कारण नहीं है। जरा भी कोई कारण नहीं है। आदमी शांत हो सकता है। आदमी संतोष को उपलब्ध हो सकता है। और आदमी आनंद को भी उपलब्ध हो सकता है। दुख और चिंता और अशांति मनुष्य की नियति नहीं, मनुष्य की भूल है। बीमारी मनुष्य की नियति नहीं है, मनुष्य का दोष है। स्वास्थ्य संभव है। जैसे शारीरिक स्वास्थ्य संभव है, वैसे ही मानसिक स्वास्थ्य भी संभव है। जैसे शारीरिक स्वस्थ्य होना संभव है, और रोज संभावना बढ़ती जाती है मनुष्य के शारीरिक स्वास्थ्य की क्योंकि हम शरीर विज्ञान की खोज में लगे हैं। ऐसे ही मनुष्य के आत्मिक स्वास्थ्य की संभावनाएं भी बढ़ सकती हैं, अगर हम आत्मिक विज्ञान की खोज में लगें। लेकिन आत्मिक विज्ञान के नाम पर हम अंधविश्वासों में पड़े हैं। तो फिर यह विकास नहीं हो सकता है।
आत्म-विज्ञान के नाम पर हम अंधविश्वासों को पकड़े हुए हैं, विज्ञान के नाम पर आदमी बहुत दिन तक जादू-टोनों को पकड़े रहा। मैजिक था, साइंस नहीं थी। कोई आदमी बीमार हो जाए, तो मंत्र फूंको। हजारों साल तक मंत्र फूंके गए, उससे कुछ भी नहीं हुआ। तो कोई कह सकता था कि आदमी स्वस्थ्य हो ही नहीं सकेगा। क्योंकि हम हजारों साल से मंत्र फूंक रहे हैं, लेकिन आदमी स्वस्थ्य नहीं होता। वह दिशा गलत थी। वह आदमी के स्वस्थ्य होने की असंभावना नहीं थी, वह दिशा गलत थी। मंत्र फूंकने से कुछ भी नहीं हो सकता। लेकिन फिर आदमी ने खोज-बीन की, रुक नहीं गया। और उसने विज्ञान को खोज लिया। उसने मेडिकल साइंस को खड़ा कर लिया। वह अब पूरी, अभी भी पूरी खड़ी नहीं हो गई है। लेकिन रोज कदम आगे बढ़ते जाते हैं। और इस बात की संभावना बढ़ती चली जाती है एक जमाना आए कि आदमी को बीमार रहने के हम सारे कारणों पर विजय पा लें। उसके स्वास्थ्य की हम सुनिश्चित व्यवस्था कर लें। जो शरीर के लिए हो सकता है, वह मन के लिए क्यों नहीं हो सकता? लेकिन मन के संबंध में भी हम जादू- टोने की स्थिति में हैं। अभी मन के संबंध में हमारी विज्ञान की स्थिति पैदा नहीं हुई है।
एक समुद्र के किनारे एक बाप अपने बेटे को लेकर टहलने गया था। छोटा था बेटा। तो वह उसको समुद्र के किनारे टहल रहा है, शाम सूरज ढल रहा है। वह छोटा बेटा अपने बाप को बड़ा ताकतवर मानता है। बाप उसके सामने अकड़ कर भी चलता है। जो भी बच्चा पूछता है वह उत्तर दे रहा है, और बच्चे को सभी उत्तर सही मालूम पड़ते हैं। क्योंकि बाप कह रहा है, तो ठीक ही कह रहा होगा। हालांकि बाप के दिए हुए उत्तर में और बच्चों के दिए हुए उत्तर में बहुत बुनियादी फर्क नहीं होता। अज्ञान करीब-करीब बराबर है। बच्चे की प्रशंसा भरी आंखों से बाप बहुत खुश हो गया है। तट पर कोई भी नहीं है, फिर सूरज डूबने लगा। उसने अपने लड़के से कहा कि देख अब मैं सूरज को आज्ञा देता हूं कि डूब जा। और उसने जोर से कहा कि गो डाउन, गो डाउन, वह सूरज तो डूब ही रहा था। सूरज डूब गया। वह बच्चा चकित खड़ा रह गया। उसने अपने बाप को कहाः डू इट अगेन डेडी, डू इट अगेन। एक बार और करके दिखाइए पिता जी। बहुत मजा आया, एक बार और करिए। तो उस पिता ने कहा कि यह काम दिन में एक ही बार होता है, अब कल करेंगे। मंत्र की ताकत इतनी है कि मैं एक ही बार कर सकता हूं, अब कल करूंगा। लेकिन बच्चा आज नहीं कल जवान हो जाएगा और जान लेगा यह मंत्र की ताकत से नहीं हुआ है।
आदमी अपने बचपन से गुजरा है, जहां तक पदार्थ का संबंध है। लेकिन आदमी अपने बचपन से नहीं गुजर सका अब तक, जहां तक अध्यात्म का संबंध है। अध्यात्म के संबंध में हम अभी भी प्रिमिटिव हैं। अभी भी आदिवासी हैं। विज्ञान के संबंध में हम थोड़े विकसित हुए हैं। पदार्थ के संबंध में हमारी जानकारी बढ़ी है। लेकिन अध्यात्म के संबंध में अभी हम उतने ही आदिवासी हैं, जितने दस हजार साल पहले आदमी था। क्यों हम आदिवासी रह गए हैं अध्यात्म की दिशा में? क्यों हम जंगलों के निवासी हैं अब तक अध्यात्म की दिशा में? कुछ कारण हैं जिनकी वजह से यह हो गया है। कुछ एक-दो कारणों पर आज मैं आपसे बात करूंगा।
पहली तो बात, विज्ञान संदेह से विकसित हुआ और धर्म विश्वास के कारण मर गया। विज्ञान का सारा विकास हो सका डाउट के कारण, संदेह के कारण। और धर्म

का विकास नहीं हो सका, विश्वास के कारण, बिलीफ के कारण। और धर्म का विकास नहीं हो सकेगा कभी भी अगर वह विश्वास से ही बंधा रखा गया तो। विश्वास का मतलब ही होता है विकास नहीं। विश्वास में आगे जाने के लिए कोई गति नहीं है। विश्वास गोल चक्कर है, जिसमें आप घूम सकते हैं, लेकिन आगे नहीं जा सकते। विश्वास कोल्हू के बैल की तरह है, चक्कर लगाता रहता है, चक्कर लगाता रहता है।
मैंने सुना है, बंगाल में एक बहुत बड़ा विचारक था, वह एक दिन सुबह अपने गांव के तेली के पास तेल खरीदने गया था। वह तेल खरीदने लगा और उसने देखा कि तेली के पीछे ही उसका कोल्हू चल रहा है। बैल कोल्हू को चला रहा है। कोई उसको चला नहीं रहा है, बैल खुद ही चले जा रहा है, तो उसने उस तेली को पूछा कि मेरे दोस्त बड़ी अजब बात है, तुम्हारा बैल बड़ा धार्मिक मालूम होता है? कोई उसे चला भी नहीं रहा, और वह चला जा रहा है, चला जा रहा है! उसको शक भी नहीं होता कि रुक कर देख ले कि कोई पीछे चलाने वाला भी है कि नहीं? तुम तो पीठ किए बैठे हो। उस तेली ने कहाः अगर तुम बैल को धार्मिक कहते हो तो मुझको एक पुरोहित समझ लो। देखेते नहीं हो, मैंने उसकी आंख पर पट्टियां बांध दी हैं, उसे दिखाई नहीं पड़ रहा है। उस विचारक ने कहा कि यह भी ठीक है, तुमने उसकी आंख पर पट्टियां बांध दी हैं, लेकिन कभी वह रुक कर भी तो पता लगा सकता है कि कोई पीछे चलाने वाला है या नहीं? उसने कहा कि तुम देख नहीं रहे हो मैंने उसके गले में घंटी बांध दी है। जब तक वह चलता रहता है, घंटी बजती रहती है, जब वह रुकता है घंटी रुक जाती है। मैं उठ कर उसको फिर चला देता हूं। उसे पता भी नहीं चल पाता कि पीछे कोई मौजूद नहीं था।
उस विचारक ने कहाः एक अंतिम प्रश्न और। बैल बड़ा नासमझ मालूम होता है,
वह खड़े होकर सिर हिलाता रहे तो घंटी बजती रहेगी और तुम समझोगे कि बैल चल रहा है। तो उस तेली ने कहाः महाराज, धीरे बोलिए, कहीं आपकी बात बैल न सुन ले। हमारा सारा धंधा ही चौपट हो जाएगा। अगर बैल को यह पता चल जाए कि सिर्फ खड़े रह कर घंटी बजाई जा सकती है।
धर्म के नाम पर धंधा है, धर्म के नाम पर पुरोहित हैं, पादरी हैं, पंडित हैं। धर्म के नाम पर शोषक हैं। धन का ही शोषण नहीं हुआ है, मनुष्य-जाति में धर्म के नाम पर उससे भी बड़ा शोषण हुआ है। मनुष्य के शरीर को ही गुलाम नहीं बनाया गया, उसकी आत्मा और उसके मन को भी गुलाम बनाने के सब उपाय किए गए हैं। और उन सब उपायों की जड़ में और बुनियाद में विश्वास की शिक्षा है। श्रद्धा करो, विश्वास करो। जो कहा गया है, उसको मानो, शक मत करो, संदेह मत करो। जो बात मान ली जाती है उसके आगे विकास अवरुद्ध हो जाता है। मानी गई बात विकास के लिए पत्थर बन जाती है। द्वार बंद हो जाता है। जिस बात पर हम शक करते हैं, संदेह करते हैं उस बात पर हम आगे बढ़ते हैं।
विज्ञान का सारा विकास इधर तीन सौ वर्षों में हुआ है। उससे पहले के दस हजार वर्षों में जो नहीं हुआ, वह तीन सौ वर्षों में हुआ है। और इधर पिछले तीस वर्षों में जो हुआ वह पूरे मनुष्य-जाति के इतिहास में नहीं हुआ था। और अगर दिन ठीक रहे और दुनिया के राजनीतिज्ञ बिल्कुल पागल साबित नहीं हुए तो शायद आने वाले तीस वर्षों में भी जो होगा वह कभी नहीं हुआ है। क्योंकि इन तीन सौ वर्षों में आदमी ने पहली बार संदेह किया। पदार्थ के संबंध में संदेह का जन्म हुआ, तो विज्ञान पैदा हो गया। आत्मा के संबंध में संदेह का जन्म होगा, तो अध्यात्म पैदा होगा।
लेकिन आत्मा के संबंध में हम सोचते हैं कि विश्वास करना चाहिए, संदेह नहीं। क्यों? क्यों विश्वास करना चाहिए? और जिस बात पर हम विश्वास कर लेते हैं, जो हमारी जानी हुई नहीं, हमारी देखी हुई नहीं, जो हमारा अनुभव नहीं, जो किसी और का अनुभव है, जो किसी और का जाना हुआ है; जब हम उस पर विश्वास कर लेते हैं तो हम अपनी आंख पर पट्टियां बांध लेते हैं।
सत्य कोई ऐसी चीज नहीं है कि कोई दूसरा जाने और आपको दे दे। सत्य स्वानुभव से ही उपलब्ध होगा। मैं प्रेम करूंगा तो मैं प्रेम को जानूंगा। मैं प्रेम पर कितना ही ग्रंथ पढ़ लूं, और कितने ही गुरुओं के चरणों में बैठ कर शिक्षा ले लूं, लेकिन प्रेम अगर मैंने नहीं किया तो मैं प्रेम को नहीं जान पाऊंगा।

प्रेम के संबंध में जान लेना और प्रेम को जान लेना दो भिन्न बातें हैं। धर्म के संबंध में जान लेना और धर्म को जान लेना दो भिन्न बातें हैं। धर्म विश्वास से नहीं, विवेक से उपलब्ध होता है। और विवेक श्रद्धा से नहीं, संदेह से उपलब्ध होता है।
पहली बात विचार कर लेने जैसी है कि धर्म की साइंस, धर्म का विज्ञान नहीं पैदा हो रहा है, क्योंकि हम संदेह के लिए बहुत भयभीत हैं। हम संदेह करने में डरे हुए हैं। जिन कौमों ने संदेह नहीं किया है, वे समझती हैं कि हम धार्मिक हैं। वे वैज्ञानिक भी नहीं हैं, धार्मिक होना तो बहुत दूर की बात है। धार्मिक होना तो बहुत ऊंची बात है, वह वैज्ञानिक भी नहीं हैं, जिन्होंने संदेह नहीं किया है।
हम अपने मुल्क को इसलिए धार्मिक समझते हैं क्योंकि हम विश्वास करते हैं। विश्वास धार्मिक आदमी का लक्षण नहीं है। विश्वास अंधे आदमी का, सुस्त आदमी का, काहिल आदमी का, आलसी आदमी का लक्षण है। एक आदमी बाजार में हंडी खरीदने जाता है तो चार तरफ से ठोक कर देखता है, दो पैसे की हंडी खरीदता है, सब तरफ से ठोक-पीट कर देखता है कि वह ठीक है या नहीं। कितना ही दुकानदार कहे कि ठीक है, हमारी दुकान पर बिल्कुल ठीक हंडी ही बिकती है, लेकिन वह कहता है, आप ठीक कहते हैं, फिर भी मैं ठोंक कर देख लेना चाहता हूं। लेकिन धर्म के दुकानदार कहते हैं हंडी ठोंक कर मत देखना। हम जो देते हैं वह आंख बंद करके ले लेना, क्योंकि तुमने आंख खोली कि नरक में गए। आंख खोलना ही मत, आंख खोलने वाले लोग भटक जाते हैं। आंख बंद करके जो स्वीकार करते हैं वे ही परमात्मा तक पहुंचते हैं।
मैं आपसे कहता हूं कि कोई आदमी अगर आंख बंद करके परमात्मा तक भी पहुंच जाए, तो ऐसे पहुंचने से इनकार कर देना चाहिए। क्योंकि आंख बंद किए हुए जो चलेगा, वह कहीं भी पहुंच जाए, सत्य पर नहीं पहुंच सकता। वह किसी सपने में ही पहुंच सकता है। सपनों के लिए आंख बंद रखना जरूरी है। सत्य के लिए आंख खोलना जरूरी है। और जो भगवान खुली आंख से उपलब्ध नहीं हो सकता, उस भगवान को उपलब्ध करने की कोई भी जरूरत नहीं है। लेकिन खुली आंख से भगवान उपलब्ध हो सकता है, और मैं तो निवेदन करूंगा, सिर्फ खुली आंख वाले लोगों को ही उपलब्ध होता है, बंद आंख वाले लोगों को नहीं। लेकिन बंद आंख का सिलसिला जारी रहा है। और जो कौम जितनी बंद आंख रख सकी है, उतनी ही वह कौम अपने को धार्मिक समझती रही है। वह धार्मिक जरा भी नहीं है।
जब तक मेरा अनुभव मुझे पदार्थ के ऊपर किसी चीज की स्वीकृति न दे, जब तक मेरा अनुभव मुझे अज्ञात की दिशा में कोई कदम बढ़ाने के लिए न कहे, जब तक मेरा अनुभव मुझे पारलौकिक की तरफ उठने का मौका न दे, तब तक मेरी सारी बातचीत, सारी श्रद्धा मुझे अंधा ही करेगी, मुझे भटकाएगी ही, मुझे आगे नहीं ले जा सकती। वह मुझे परतंत्र करेगी, मुझे स्वतंत्र नहीं कर सकती। और हम धार्मिक आदमी को कहते हैं मुक्त। जो विश्वास से बंधा है, वह मुक्त कैसे हो सकता है? विश्वास की जंजीर तोड़ देनी जरूरी है, ताकि विवेक का जन्म हो सके। मनुष्य के जीवन में, चेतना के विकास में हम उलटी चीजों से बंधे हों, और उलटी चीजों की कामनाएं करते हों, तो विरोधाभास पैदा होगा ही।
एक आदमी कहता हो मुझे प्रकाश के दर्शन करने हैं, और आंख बंद किए हो; और कहे कि मुझे तो सैकड़ों साल हो गए हैं आंख बंद किए हुए, लेकिन प्रकाश के दर्शन नहीं होते। तो हम उससे कहेंगे कि यह विरोधाभास तुम्हारी बंद आंख के कारण पैदा हो रहा है। परमात्मा सबसे बड़ा प्रकाश है। खुली हुई आंखें चाहिएं, शरीर की ही आंखें नहीं, चेतना की आंखें भी खुली चाहिए। विश्वास चेतना की आंखों को बंद कर देता है। विश्वास अंधा बनाता है। फिर चाहे वह विश्वास हिंदू का हो, चाहे मुसलमान का, चाहे जैन का, चाहे ईसाई का। फिर चाहे वह विश्वास आस्तिक का हो, चाहे नास्तिक का। फिर वह चाहे विश्वास कम्युनिस्ट का हो चाहे गैर-कम्युनिस्ट का। विश्वास मात्र मनुष्य को अंधा बनाता है।
हिंदू और मुसलमानों में बहुत विरोध है। ईसाइयों में और बौद्धों में बहुत विरोध है। लेकिन एक बात में वे सब सहमत हैं कि आदमी को विश्वास करना चाहिए। यह बुनियादी सीक्रेट है पूरे धंधे का। इसमें कोई विरोध नहीं है।

इसमें हिंदू और ईसाई में कोई झगड़ा नहीं है। इसमें जैन और बौद्ध में कोई झगड़ा नहीं है कि विश्वास होना चाहिए। इस एक बात पर दुनिया के सभी लोग सहमत हैं कि विश्वास होना चाहिए। क्योंकि विश्वास के बिना जो वह चला रहे हैं, वह तो नहीं चल सकता।
दुनिया में धर्म तो हो सकता है संदेह के कारण, लेकिन हिंदू, ईसाई, मुसलमान, जैन नहीं हो सकते। संदेह होगा, तो हिंदू, मुसलमान विदा हो जाएंगे। धर्म रहेगा, धर्म आएगा, लेकिन हिंदू, मुसलमान के रहने की कोई जगह नहीं रह जाएगी। क्या आप सोच सकते हैं कि हिंदू की गणित अलग हो सकती है, ईसाई की गणित अलग? क्या आप सोच सकते हैं कैथेलिक की केमिस्ट्री अलग और प्रोटेस्टेंट की केमिस्ट्री अलग हो सकती है? क्या आप सोच सकते हैं, भूगोल जैनियों का अलग होगा, बौद्धों का अलग होगा? नहीं, पदार्थ के जगत में एक ही बात होगी। सौ डिग्री पर पानी गरम होता है तो चाहे हिंदू गर्म करे, चाहे मुसलमान गर्म करे सौ डिग्री पर गर्म होगा। पानी यह नहीं कहता कि तुम मुसलमान हो, तुम्हारी कुरान अगल, तुम्हारे भगवान अलग, तुम्हारी मस्जिद अलग, तो हम तुम्हारे लिए अगल ढंग से गर्म होंगे। पानी गर्म होता है सौ डिग्री पर चाहे कोई गर्म करे। पानी का नियम एक है, पदार्थ का नियम एक है। परमात्मा के नियम अनेक कैसे हो सकते हैं? कोई भी नियम अनेक नहीं हो सकते, नियम हमेशा सार्वभौम होते हैं, युनिवर्सल होते हैं।
जमीन पर तीन सौ धर्म हैं, तीन सौ साइंस हो सकती हैं? जिस दिन जमीन पर तीन सौ साइंस होंगी समझ लेना कि जमीन एक बड़ा पागलखाना हो गया है। लेकिन तीन सौ धर्म है जमीन पर। और रोज खड़े होते जाते हैं क्योंकि एक पागल आदमी को यह ख्याल पैदा हो जाए कि मुझे सत्य उपलब्ध हो गया है, और वह जोर से टेबल पीट कर कह सके कि मुझे सत्य उपलब्ध हो गया है। दस-पच्चीस कमजोर आदमी कंपते हुए उसके पास इकट्ठे हो जाएंगे, इसलिए नहीं कि उसको सत्य उपलब्ध हो गया है, इसलिए कि वह जोर से बोलता है। जोर से बोलने का बड़ा प्रभाव पड़ता है।
एक गुरु, एक बहुत बड़ा वकील अपने शिष्य को समझा रहा था, उसकी सारी शिक्षा पूरी हो गई थी, और कल ही वह अदालत में जाने को था। उसके गुरु से उसने पूछा कि अब आखिरी संदेश क्या है मेरे लिए? कल मुझे अदालत में जाना है। तो उस बूढ़े वकील ने कहाः एक बात ध्यान में रखना, अगर कानून तुम्हारे पक्ष में हो, तो वकील के सिर पर हेमर करना, बिल्कुल कानून ही कानून थोपना उसके सिर पर, एकदम हथौड़ी की चोट पर कानून की बात करना। उस युवक ने पूछाः अगर कानून मेरे पक्ष में न हो? तो उसने कहाः फिर मजिस्ट्रेट के हृदय पर चोट करने की कोशिश करना। उसकी सहानुभूति पाने की कोशिश करना। फिर कविता पढ़ना और काव्य की बातें करना, और उसकी दया को प्रभावित करने की कोशिश करना। और उसने कहा कि अगर मेरा मामला ऐसा भी न हो, जिसको सहानुभूति मिल सके? तो उसने कहाः फिर जोर-जोर से टेबल पीटना। इतने जोर से पीटना कि सारी अदालत समझे कि जो आदमी इतनी जोर से टेबल पीट रहा है, वह ठीक ही पीट रहा होगा, क्योंकि कोई झूठा आदमी इतने जोर से टेबल पीटता है?
एक पागल आदमी को यह ख्याल पैदा हो जाए कि मैं पैगंबर हूं, मैं तीर्थंकर हूं, मैं अवतार हूं, मैं फलां हूं, ढिकां हूं। और सिर्फ पागलों को ही ये ख्याल पैदा होते हैं। किसी समझदार आदमी को यह ख्याल पैदा नहीं होते। धार्मिक आदमी को ये ख्याल पैदा नहीं होते कि मैं तीर्थंकर हूं, मैं अवतार हूं, मैं पैगंबर हूं; मैं ही ईश्वर का संदेश लेकर आया हूं। ये सब विक्षिप्त और न्यूरोटिक दिमागों के लक्षण हैं। धार्मिक आदमी को तो यह ख्याल होता है मैं हूं ही नहीं, मैं क्या संदेश लेकर आऊंगा?
धार्मिक आदमी तो वह है जो परमात्मा में मिट जाता है। और अभी हम उन धार्मिक लोगों को पकड़े बैठे हैं जिनकी घोषणाएं, जिनके अहंकार की घोषणाएं बड़ी मजबूत हैं कि मैं यह हूं, मैं वह हूं। और कमजोर लोग उनके आस-पास इकट्ठे हो जाते हैं। और एक नया धर्म खड़ा हो जाता है। सारी दुनिया में धर्म बढ़ते चले गए हैं। लेकिन धार्मिकता कम होती चली गई है। धार्मिकता बढ़ ही नहीं सकती, धर्मों के बढ़ने के साथ। दुनिया में जिस दिन भी मनुष्य विवेक और संदेह और विचार से सोचेगा, उस दिन धर्म बचेगा, धर्मों के बचने की कोई जगह नहीं रह जाएगी। रिलीजन होगा, रिलीजंस नहीं हो सकते। और जब तक रिलीजंस हैं,

जब तक धर्म हैं, तब तक अध्यात्म संभव नहीं है। अध्यात्म तो पदार्थ के जगत में जैसा विज्ञान है, वैसा चेतना के जगत में अध्यात्म है। अध्यात्म तो होगा सार्वलौकिक, सार्वभौमिक, सार्वजनिक, एक, सारे विश्व का। क्योंकि वे नियम सार्वभौमिक हो सकते हैं, वे नियम अलग-अलग लोकल नहीं हो सकते कि पूना का अलग धर्म है और बंबई का अलग धर्म है। और फिर पूना में ही मस्जिद वाले का अलग धर्म है, मंदिर वाले का अलग धर्म है। यह संभावना नहीं है, लेकिन यह संभावना अब तक रही, क्योंकि विश्वास के आधार पर धर्मां को खड़ा किया गया है। विश्वास अंधा है वह यह नहीं पूछ सकता है कि क्या गलत है? तो जो भी पकड़ा दिया जाता है वह ठीक ही हो जाता है। उसको कुछ संदेह करने का, विचार करने का कोई सवाल नहीं रह जाता है।
विश्वास ने मनुष्य-जाति को अध्यात्मिक नहीं होने दिया, पहली बात। दूसरी बात, मनुष्य को मनुष्य के सारे इतिहास में एक बात को निरंतर ध्यान रखना जरूरी रहा है जोनहीं हो सका अब तक वह यह कि लोग सोचते हैं कि जीवन की श्रेष्ठतम अनुभूतियां पारंपरिक हो सकती हैं, ट्रेडिशनल हो सकती हैं, तो भूल में हैं। जीवन की श्रेष्ठ अनुभूतियां हमेशा वैयक्तिक होती हैं, उनकी कोई परंपरा, उनका कोई समूह, कोई धारा नहीं होती, जीवन की श्रेष्ठ अनुभूतियों की। सौंदर्य का अनुभव मेरा अनुभव है। प्रेम का अनुभव मेरा अनुभव है। सत्य का अनुभव भी मेरा अनुभव होगा, प्रार्थना का अनुभव भी मेरा अनुभव होगा। मैं अपने निजी एकांत में, मैं अपने व्यक्तित्व की गहराइयों में उसे अनुभव करूंगा और जानूंगा। लेकिन परंपराओं से चलते हुए शब्द, और शास्त्र, और ज्ञान अगर मैं पकड़ लूं, तो मैं उनमें जकड़ जाऊंगा, और मेरी निजी अनुभूतियों से वंचित रह जाऊंगा।
आदमी नहीं धार्मिक हो पाया क्योंकि धर्म एक परंपरा बन गया है। धर्म परंपरा नहीं है, धर्म अंतर्भाव है। धर्म अंदर से अविर्भाव है। बाहर से मिली हुई बपौती नहीं। धन की बपौती मिल सकती है। मेरे बाप मुझे जाते वक्त धन दे सकते हैं, मैं अपने बेटे को जाते वक्त धन दे सकता हूं। लेकिन ज्ञान नहीं। अनुभव नहीं। मैंने जो जाना और जीया है, उसे मैं ज्यादा से ज्यादा शब्द दे सकता हूं, लेकिन वह अनुभूति ट्रांसफरेबल नहीं है, एक हाथ से दूसरे हाथ में नहीं दी जा सकती।
अब तक हमने अनुभूतियों को भी हस्तांतरणीय मान लिया है। और जो दिया गया है हम उसे पकड़ कर बैठ गए हैं। फिर हमारे हाथ में कोरी राख रह जाए तो आश्चर्य नहीं है। क्योंकि अनुभूति का अंगारा एक व्यक्ति की अपनी अनुभूति से जलता है। दूसरे के हाथ में जाकर वह राख हो जाती है। फिर उस राख को पकड़ कर हम बैठे रहें, और पूजा करते रहें हजारों साल तक तो भी उसमें आग पैदा नहीं होती। आग तो हमेशा अपनी ही अनुभूति से उत्पन्न होती है।
तो धर्म न तो श्रृद्धा है; धर्म है विवेक। और धर्म परंपरा नहीं है; धर्म है वैयक्तिक अनुभूति। वह है इंडिविजुअल एक्सपीरिएंस। उसके लिए कोई ऐसा रास्ता नहीं है कि कोई किसी को देता चला जाए और वह आगे बढ़ता चला जाए। एक महाकवि समुद्र के किनारे गया हुआ था, वहां उसने सुबह ही जाकर देखा
कि बहुत सुंदर हवाएं हैं। सूरज निकला है, बड़ी ताजी रोशनी है। बड़ी सुगंध और शीतलता से भरी हुई हवाओं में वह आनंद से नाच उठा और गीत गाने लगा। फिर उसे ख्याल आया कि मैं अकेला आया हूं। उसकी पत्नी, उसकी प्रेयसी तो दूर एक अस्पताल में बीमार पड़ी है। यह खुशी मैं उसे किस तरह भेजूं? यह आनंद जो मैंने जाना है, इस सुबह इस समुद्र के तट पर, यह उसे किस तरह पहुंचाऊं? फिर वह कवि ही था। उसे ख्याल आया कि क्यों न मैं एक सुंदर पेटी बनाऊं और उसमें यह सब रोशनी और यह सब हवा बंद कर दूं और अपनी पत्नी को भेज दूं।
आखिर वह कवि ही था, उसे यह ख्याल भी नहीं आया कि पेटियों में समुद्र की हवाएं और सूरज की रोशनियां बंद नहीं होतीं। लेकिन वह पेटियां ले आया। अगर उसको ख्याल आ जाए तो वह कवि न होकर वैज्ञानिक हो जाए। उसे ख्याल नहीं आया। वह गया और जाकर उसने बहुत खूबसूरत पेटी बनवाई, पेटी बहुत खूबसूरत थी, इसमें कोई शक नहीं। लेकिन पेटी की खूबसूरती सूरज की रोशनी को बंद नहीं कर सकती। उसने आकर समुद्र के किनारे की हवाएं उस पेटी में भरी, रोशनी भरी, फिर खूब ताला ठीक से लगाया। फिर एक चिट्ठी लिखी और संदेशवाहक के हाथ वह पेटी

भेजी। और उस पत्र में उसने लिखा कि इतना सुंदर, इतना आनंदपूर्ण प्रभात मैंने देखा है कि अपने जीवन में नहीं देखा। तुम वंचित न रह जाओ इसलिए नमूने के लिए थोड़ा सा भर कर मैं पेटी में तुम्हारे पास भेज रहा हूं। वह चिट्ठी पहुंच गई, उसकी पत्नी थोड़ी तो हैरान हुई, क्योंकि स्त्रियां चाहे कितनी ही भावुक हों, कवियों से कम भावुक होती हैं। थोड़ी तो हैरान हुई कि पेटी में कैसे यह आ सकता है, लेकिन हो सकता है, महाकवि था उसका पति। और कवि क्या नहीं कर सकते हैं? जहां कोई नहीं पहुंचता कहते हैं कवि वहां पहुंच जाते हैं। शायद कोई तरकीब की हो। उसने पेटी खोली, वहां तो खाली पेटी थी, न वहां कोई सुगंध थी, न वहां ठंडी हवाएं थीं, न वहां कोई रोशनी थी। वह बहुत हैरान हो गई। उसने अपने पति को खबर भेजी कि पेटी पहुंच गई, पत्र भी पहुंच गया, लेकिन जो तुमने भेजा था, वह शायद पीछे ही छूट गया। वह नहीं आ पाया। सत्य के और परमात्मा के सागर के किनारे भी कुछ लोग पहुंच जाते हैं। फिर उन्हें वहां अपने प्रेमियों की याद आती है। फिर उन्हें ख्याल आता है कि यह अनुभव परमात्मा के निकट आकर जो उपलब्ध हुआ है, इसे अपने प्रेमियों के पास कैसे भेज दें? उनका प्रेम ठीक है, उनकी करुणा ठीक है, उनका स्मरण ठीक है, उनकी दया ठीक है; वे बड़ी अनुकंपा से भरते हैं। और शब्दों की पेटियों में उस अनुभव को भर कर भेज देते हैं। फिर हमें गीता मिल जाती है, कुरान मिल जाती है, बाइबिल मिल जाते हैं, धम्मपद मिल जाते हैं। एक से एक बढ़िया शास्त्र मिल जाते हैं।
लेकिन उस कवि की पत्नी ने जितनी समझदारी बरती, उतनी समझदारी हम नहीं बरत पाते हैं। शब्द मिल जाते हैं, पत्र मिल जाते हैं, पेटी मिल जाती हैं, लेकिन जो उन्होंने जाना था परमात्मा के निकट पहुंच कर वह नहीं आता शब्दों में। कोरे खाली शब्द हमारे पास आ जाते हैं। हम उन्हीं शब्दों को पकड़ कर बैठ जाते हैं। हम उन्हीं शास्त्रों की पूजा करने लगते हैं। हम उन्हीं शास्त्रों को लेकर नाचने गाने लगते हैं। हम अगर यह शास्त्र हमें इतना ही ख्याल दिला सकें कि नहीं जो लोग पहुंचे हैं उस किनारे पर उन्होंने तो बहुत प्रेम से खबर भेजी है, लेकिन वह खबर आ नहीं पाई। शब्द आ गए हैं, अनुभव नहीं आते हैं। अनुभव पीछे ही छूट जाते हैं। अगर हमें यह ख्याल आ जाए तो शायद शास्त्रों को हम पकड़े नहीं, तो शायद शब्दों को हम पकड़ें नहीं; तो शायद शास्त्र और शब्द हमारे भीतर एक प्यास जगा कर शांत हो जाएं, और सागर के किनारे पहुंचने की तीव्र, तीव्र अभीप्सा हमारे भीतर पैदा हो जाए। शायद हम भी वहां जाना चाहें, जहां बुद्ध ने जाकर जाना, जहां कृष्ण ने जाकर नाचा, जहां क्राइस्ट ने जाकर पहचाना; शायद हम भी वहां जाना चाहें।
लेकिन नहीं, हम यहीं तृप्त हो जाते हैं। पेटियों को, शब्दों को पकड़ कर बैठ जाते हैं। एक मंदिर बना लेते हैं अपने घर में, हमारी गीता का मंदिर, हमारे बाइबिल का मंदिर, हमारे कुरान का मंदिर, फिर हम पूजा करते हैं, और यहीं तृप्त हो जाते हैं, और वह सागर जिसके पास जाना जरूरी था, और भी दूर रह जाता है, हमारी आंख भी उस तरफ उठनी बंद हो जाती है। धर्म शास्त्र में नहीं है। धर्म अनुभूति में है। शास्त्र अनुभूति से निकले हुए उच्छिष्ट से ज्यादा नहीं है, झूठे से ज्यादा नहीं है। लेकिन उनको पकड़ कर, परंपराओं को पकड़ कर, सिद्धांतों को पकड़ कर आदमी रुक गया है, इसलिए आदमी आध्यात्मिक नहीं हो पाया है।
श्रद्धा से मुक्ति चाहिए अगर मनुष्य को आध्यात्मिक बनाना हो। परंपरा
से मुक्ति चाहिए, शास्त्र से मुक्ति चाहिए, तो मनुष्य के भीतर वह संभावना प्रकट हो सकती है जो उसे प्रभु के निकट पहुंचा देती है। प्रभु तो बहुत-बहुत निकट है, लेकिन हम कुछ पीठ किए हुए खड़े हैं। सत्य तो हम सबके हाथ की संभावना हैं, लेकिन हम असत्य को पकड़ कर बैठे हुए हैं। जहां हम पहुंच सकते हैं, वहां हम नहीं पहुंच पा रहे हैं। क्योंकि हम कुछ गलत दिशाओं में यात्राएं कर रहे हैं। यह इस कारण आदमी आज तक शांति को, आनंद को, प्रेम को उपलब्ध नहीं हो सका है।
लेकिन निराश होने का कोई भी कारण नहीं है। जो आज तक नहीं हो सका, वह कल
ही हो सकता है, वह आज भी हो सकता है। जो दस हजार वर्षों में नहीं हुआ वह कल हो सकता है। कल की संभावनाएं अनंत है। लेकिन अगर हम कल की पिटी हुई लकीरों

पर ही चलते जाएं, तो नहीं होगा। क्योंकि वे पिटी लकीरें आज तक आदमी को कहीं भी नहीं ले जा सकी हैं। अगर उन्हीं लीकों पर हम चलते चले जाएं, तो नहीं होनी यह बात। लेकिन यह हो सकती है क्योंकि वे रास्ते छोड़े जा सकते हैं। नये रास्ते खोजे जा सकते हैं। नये मार्ग खोजे जा सकते हैं। पुरानी भटकन मिटाई जा सकती है। आंख से पट्टियां उतारी जा सकती है। धोखे से बचा जा सकता है।
एक छोटी सी घटना और आज की बात मैं पूरी करूंगा।
शैतान ने एक बार सारी दुनिया के लोगों को खबर की कि मुझे कुछ चीजें नीलाम करनी हैं, ऑक्सन करना है। अब शैतान की चीजों को लेने के लिए दुनिया में जिनके पास भी सामर्थ्य थी वह सभी पहुंच गए। क्योंकि एक से एक बढ़िया चीजें होंगी। भगवान के पास तो कुछ बढ़िया चीजें होती नहीं। प्रार्थना होती है, ध्यान होता है, शांति होती है। शैतान के पास न मालूम क्या-क्या तरकीबें हों? क्या-क्या खूबियां हों? सारे लोग शैतान के ऑक्सन में पहुंच गए। उसने कई चीजों पर... सब चीजों पर दाम लगा कर रख छोड़े थे, जिनको नीलाम होना था। उसमें बेईमानी थी, उसमें हिंसा थी, उसमें झूठ था, उसमें क्रूरता थी, उसमें सब चीजें थीं। सबके दाम थे, सब चीजें आदमियों की हैसियत के भीतर थीं। उन्होंने उनको धीरे-धीरे... सभी चीजें बिक गईं। सिर्फ एक चीज, निराशा, तो बहुत ज्यादा दाम लगा रखे थे उस पर। उसको खरीदने की सामर्थ्य किसी के भी भीतर नहीं थी। लोगों ने उस शैतान से कहा कि निराशा के इतने दाम लगा रखे हैं, एक से एक बढ़िया चीजें--हिंसा, कठोरता, दुष्टता, सब सस्ते में बेच दीं आपने, निराशा के इतने दाम क्यों लगा रखे हैं। शैतान ने कहाः मेरी और कोई चीज असफल हो जाए, निराशा कभी असफल नहीं हो सकती। जिस आदमी को मुझे परमात्मा की तरफ जाने से रोकना होता है, उसको मैं निराशा पिला देता हूं। और सब चीजें असफल हो जाती हैं, कठोर आदमी नम्र बन जाता है, हिंसक आदमी अहिंसक हो जाता है; झूठ बोलने वाला, सच बोलने लगता है, और सब तरकीबें गलत साबित हो जाती हैं, लेकिन निराशा मेरी कभी गलत साबित नहीं होती। क्योंकि निराश आदमी कुछ होने का ख्याल ही छोड़ देता है। हिंसक को हमेशा लगता रहता है, मैं अहिंसक हो जाऊं। बेईमान को लगता है, मैं ईमानदार हो जाऊं। लेकिन निराशा का मतलब ही यह है कि जिसको यह लगता है कि अब मैं कुछ भी नहीं हो सकता हूं।
तो निराशा सबसे अदभुत चीज है मेरे पास। इसको मैं सस्ते में नहीं बेच सकता। सब चीजें बिक गईं, निराशा नहीं बिक सकी, वह शैतान के पास अभी भी है। और अभी भी वह एक ही तरकीब से सारी मनुष्य-जाति को आगे बढ़ने से हमेशा रोकता रहता है। बस एक ही दवा उसके पास रह गई है। सब दवाएं आदमियों ने खरीद लीं। और हिंदुस्तान के आदमियों ने काफी चीजें खरीद लीं। एक दवा उसके पास रह गई है, निराशा की। और अगर मनुष्य-जाति को कोई चीज रोकेगी आगे बढ़ने से, तो वह सिर्फ निराशा है, और कुछ भी नहीं।
मैं निराश नहीं हूं। और मैं आपसे भी निवेदन करता हूं, निराश होने का कोई भी कारण नहीं है। यह हो सकता है कि जो आज तक नहीं हुआ, उसके न होने का कारण हमारी कोई बुनियादी भूलें थीं। वह कल हो सकता है। रोज नई चीजें होती चली जाती हैं। जिंदगी रोज नई हो जाती है और नये रास्ते ले लेती है।
धर्म के मामले में हम पुराने रास्तों से पागल की तरह चिपके हुए हैं।
उन पर हमने चिंतन, विचार, संदेश सब बंद कर दिया है। हमारा विवेक अवरुद्ध हो गया है। यह विवेक जाग्रतहो, तो मनुष्य के जीवन में एक नई क्रांति आ सकती है। मानवीय चेतना एक नई क्रांति से गुजर सकती है। यह क्रांति कैसे हो सकती है, इस संबंध में आने वाली चर्चाओं में मैं आपसे बात करूंगा।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं।
मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

अमृत द्वार
दूसरा प्रवचन

विश्वास नहीं, विचार

मेरे प्रिय आत्मन्!
सुबह की चर्चा में मैंने कुछ बातें कही हैं। उस संबंध में कुछ प्रश्न
आए हैं। और कुछ स्वतंत्र प्रश्न भी हैं।
मैंने सुबह कहा कि पृथ्वी पर तीन सौ धर्म हैं, और इतने धर्म इस बात की सूचना देते हैं कि धर्म के संबंध में मनुष्य-जाति अब तक विवेकयुक्त और विज्ञानयुक्त नहीं हो पाई है। वैज्ञानिक नियम तो सार्वलौकिक होते हैं, युनिवर्सल होते हैं। गणित एक है सारी पृथ्वी का। धर्म भी एक ही हो सकता है। जिस दिन भी हम परमात्मा के संबंध में ठीक बुद्धियुक्त, विचारयुक्त और विज्ञानयुक्त दृष्टि को उपलब्ध होंगे, उस दिन पृथ्वी पर धर्मों के अलग-अलग मंदिर और अलग-अलग शास्त्रों की कोई जरूरत नहीं रह जाएगी।
एक मित्र ने पूछा हैः इन तीन सौ धर्मों में सर्वश्रेष्ठ धर्म कौन सा है?
शायद वे मेरी बात नहीं समझ पाए हैं। सर्वश्रेष्ठ तभी कोई हो सकता है,
जब दो धर्म हो सकते हों। दो धर्म ही नहीं हो सकते, इसलिए न कोई निकृष्ट है, न कोई श्रेष्ठ है। सब एक से व्यर्थ हैं। सर्वश्रेष्ठ होने की बात तो तभी संभव है, जब एक से ज्यादा हों। या तो गणित ठीक होता है, या गलत होता है। कोई ठीक, कोई श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ नहीं होता। ये जो तीन सौ संप्रदाय हैं, उनका सांप्रदायिक मोह, उनका परंपरा का मोह, उनका श्रद्धा और विश्वास का मोह, उनमें से किसी को भी धर्म नहीं होने देता। किसी बात के सत्य और धर्म होने के लिए जितनी स्वतंत्रता चाहिए, संप्रदाय उस स्वतंत्रता के बिल्कुल विपरीत हैं। वे शायद मेरी बात नहीं समझ पाए। उनकी बात को और उनके प्रश्न को सुन कर मुझे एक घटना याद आती है।
बर्टेंड रसल ने एक किताब लिखी। और उस किताब में लिखा कि जो व्यक्ति भी
इस किताब को पढ़ रहा हो, उसके राष्ट्र से महान राष्ट्र पृथ्वी पर और कहीं नहीं है। ये उसने मजाक में लिखा। क्योंकि हर आदमी को यह ख्याल है कि मेरा राष्ट्र महान है। उसने उसकी भूमिका में लिखा कि जो आदमी भी इस किताब को पढ़ रहा है, उसके राष्ट्र से महान और कोई भी राष्ट्र दुनिया में नहीं है। हिंदू पढ़ेगा, तो सोचेगा कि हिंदू राष्ट्र। और चीनी पढ़ेगा तो सोचेगा चीनी। एक पोलैंड से एक आदमी ने उसको पत्र लिखा कि आपकी किताब मुझे बहुत पसंद आई। और आपने यह बात स्वीकार कर ली कि पोलेंड से महान राष्ट्र कोई भी नहीं है, इससे मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूं। बर्टेंड रसल ने तो सिर्फ इस मजाक में यह लिखा था कि हर आदमी को यह भ्रम है कि उसका राष्ट्र महान है। और उस पोलेंड के निवासी ने समझा कि यह मेरे लिए ही लिखा गया है। और मेरा राष्ट्र ही महान है।
तो जब आप पूछ रहे हैं कि इन तीन सौ धर्मों में से कौन सा धर्म श्रेष्ठ है? तब आप भलीभांति जानते हैं कि कौन सा धर्म श्रेष्ठ है, जिसको आप मानते हैं, वही श्रेष्ठ है।
हमारे अहंकार, अनेक तरह के आभूषण इकट्ठे करते हैं। मेरा अहंकार यह मानने को राजी नहीं होता कि मेरा देश किसी से नीचा हो सकता है। और मेरा अहंकार यह भी मानने को राजी नहीं होता कि मेरा धर्म किसी से नीचा हो सकता है। मेरा अहंकार अनेक रूपों में प्रकट होता है। मैं घोषणा करता हूं कि भारत सबसे ऊंचा राष्ट्र है। हिंदू धर्म श्रेष्ठतम धर्म है। या मुसलमान धर्म श्रेष्ठतम धर्म है। या जैन धर्म श्रेष्ठतम धर्म है। इसमें आप यह घोषणा नहीं कर रहे हैं कि कौन सा धर्म श्रेष्ठ है? इसमें आप यह घोषणा कर रहे हैं कि आप श्रेष्ठ हैं। जिस धर्म को आप मानते हैं वह भी श्रेष्ठ है और जिस जमीन पर आप पैदा हो जाते हैं वह जमीन भी श्रेष्ठ है। सारी दुनिया की जमीन एक जैसी है। न कोई राष्ट्र श्रेष्ठ है, और न कोई नीचे है, और न कोई ऊपर है। लेकिन न कोई रंग ऊपर है, न कोई जाति। लेकिन हमारा अहंकार मानने को राजी नहीं होता है कि मुझसे ऊपर भी कोई हो सकता है। ख्याल होता है कि मैं ही

सबसे ऊपर हूं। और हम सब तरह की कोशिश करते हैं इस बात को सिद्ध करने की कि मैं ऊपर कैसे हूं? हम अपने अतीत की गुण-गाथाएं बढ़ा-चढ़ा कर पेश करते हैं। हमारे मुल्क में तो यह पागलपन बहुत गहरा है। एक कोने से दूसरे कोने तक साधु-संत, बोलने वाले विचारशील, पंडित, नेता सभी दोहराते फिरते हैं कि भारत जगतगुरु है। दुनिया में कोई इस बात को कहे या न कहे, भारत के लोग ही इस बात को कहे चले जाते हैं कि हम जगत गुरु हैं। यह हालत वैसी है जैसे एक दिन एक आदमी ने बाजार में जाकर जोर से डुंडी पीट दी थी और कह दिया था कि मेरी स्त्री से ज्यादा सुंदर पृथ्वी पर कोई भी नहीं है। तो बाजार के लोग पूछने लगे कि यह बताया किसने आपको? तो उसने कहा कि यह मेरी स्त्री ने ही मुझे बताया। यह उसने ही मुझसे कहा है कि उससे ज्यादा सुंदर और पृथ्वी पर कोई भी नहीं है। बाजार के लोग हंसने लगे, और उन्होंने कहा कि तुम्हारी स्त्री ने तो ठीक कहा, लेकिन तुम पागल हो गए हो।
हम अपने मुंह से ही दोहराते चले जाते हैं कि हम श्रेष्ठ हैं। लेकिन यह बात सीधी अगर कोई आकर कहे कि मुझसे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है, तो हम सब कहेंगे, तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। लेकिन इनडायरेक्टली, परोक्ष रूप से वह कहता है, हिंदू धर्म श्रेष्ठ है। हम भी हिंदू हैं, इस बात को इनकार करना मुश्किल हो जाता है। वह कहता है, मुसलमान धर्म श्रेष्ठ है। हम भी मुसलमान हैं, इनकार करना मुश्किल हो जाता है। तब हम इस बात को खोज ही नहीं पाते कि मुसलमान श्रेष्ठ है। यह कह कर वह कह रहा है कि मैं श्रेष्ठ हूं। मैं जिस धर्म में पैदा हुआ, जिस जमीन पर, जिस धर्म में, वह श्रेष्ठ है। लेकिन चूंकि हम भी उसके इस पागलपन में सम्मिलित हैं, उसके अहंकार में हमारे अहंकार की भी तृप्ति है, इसलिए कोई इनकार नहीं करता। और दुनिया में हजारों तरह के पागलपन चलते चले जाते हैं।
पेरिस विश्वविद्यालय में, दर्शनशास्त्र का एक बड़ा प्रोफेसर था। वह विभाग का अध्यक्ष था। हैड था डिपार्टमेंट का। उसने एक बार अपने विद्यार्थियों को कहा कि मुझसे श्रेष्ठ आदमी पृथ्वी पर कहीं भी नहीं है। उसके विद्यार्थी थोड़े हैरान हुए, एक गरीब प्रोफेसर कैसे यह घोषणा कर रहा है? उन्होंने कहाः आप तो दर्शनशास्त्र के अध्यापक हैं, आप कैसे यह बात कहते हैं? उसने कहा मैं सिद्ध कर सकता हूं। और उसने सिद्ध कर दिया कि वह दुनिया का सबसे श्रेष्ठ आदमी है। आपको भी मैं तरकीब बताए देता हूं, उसने कैसे सिद्ध किया? आप भी सब सिद्ध कर सकते हैं। उसने दुनिया का नक्शा टांगा, और उन लड़कों से पूछा कि तुम यह मानते हो कि फ्रांस दुनिया का श्रेष्ठतम मुल्क है कि नहीं? वे सभी फ्रांसिसी थे, उन्होंने कहा, बिल्कुल मानते हैं। फ्रांस दुनिया का सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र है। उसने नक्शे पर पेरिस पर हाथ रखा और कहा कि तुम यह मानते हो कि नहीं कि पेरिस फ्रांस में सबसे श्रेष्ठ नगर है? उन्होंने कहाः यह बात भी सच है कि पेरिस फ्रांस में सर्वश्रेष्ठ नगर है। उस प्रोफेसर ने कहाः इसका मतलब हुआ कि पेरिस दुनिया का सबसे श्रेष्ठ नगर है। फ्रांस सर्वश्रेष्ठ देश है। फ्रांस में सर्वश्रेष्ठ नगर पेरिस है। और उसने कहा कि तुम यह मानते हो कि नहीं कि पेरिस में पेरिस का विश्वविद्यालय सर्वश्रेष्ठ जगह है? उन्होंने कहा कि यह भी ठीक है। और उसने कहा कि पेरिस विश्वविद्यालय में फिलासफी से श्रेष्ठ कोई विषय नहीं? यह भी ठीक है। और उसने कहा कि पूरे फिलासफी का हेड ऑफ दि डिपार्टमेंट मैं हूं, तो मैं तुमसे कहता हूं कि मुझसे बड़ा आदमी इस दुनिया में कोई भी नहीं है।
हर आदमी ऐसी कोशिश करता है। उस पर हंसने की कोई जरूरत नहीं है, हम सब
भी इसी तरह की कोशिश में लगे हैं। इस कोशिश से हमारा पागलपन तो सिद्ध होता है और कुछ भी सिद्ध नहीं होता। यह मत पूछिए कि कौन सा धर्म श्रेष्ठ है? धार्मिकता अधार्मिकता से श्रेष्ठ है, कोई धर्म श्रेष्ठ नहीं है। रिलिजियस होना इररिलिजियस होने से श्रेष्ठ है। अधार्मिक होने से धार्मिक होना श्रेष्ठ है। लेकिन एक धर्म से दूसरा धर्म श्रेष्ठ नहीं है, क्योंकि दुनिया में दो धर्म हो ही नहीं सकते।
कभी आपने तीन सौ प्रकार के प्रेम सुने हैं? कभी तीन सौ प्रकार के सत्य सुने हैं? कभी आपने यह सुना है, स्वास्थ्य कितने प्रकार के होते हैं?

बीमारियां हजार प्रकार की हो सकती हैं, स्वास्थ्य एक ही प्रकार का होता है। मैं एक तरह से बीमार हो सकता हूं, आप दूसरी तरह से बीमार हो सकते हैं, यह हमारी मौज है। बीमार कोई किसी भी तरह से हो सकता है। बीमार होने के लाख रास्ते हो सकते हैं। जमीन पर जितने आदमी हैं उतने ढंग हो सकते हैं बीमार होने के। लेकिन स्वस्थ्य होने के कोई अलग-अलग रास्ते नहीं हैं। जब मैं स्वस्थ होऊंगा और आप स्वस्थ होंगे, तो स्वास्थ्य एक ही प्रकार का होगा। बीमारियां अलग-अलग प्रकार की हो सकती हैं। स्वस्थ्य होने में मैं अलग तरह से और आप अलग तरह से स्वस्थ्य नहीं हो सकते। तो स्वास्थ्य तो एक प्रकार का होगा, बीमारियां बहुत प्रकार की हो सकती हैं।
हम इतने लोग यहां बैठे हुए हैं, हम सभी अशांत हो जाएं, तो हम सबकी अशांतियां अलग-अलग ढंग की होंगी। मेरी अशांति मेरी होगी, आपकी आपकी होगी। लेकिन अगर हम सारे बैठे हुए लोग शांत हो जाएं, तो क्या कोई यह कह सकता है कि मेरी शांति आपकी शांति से भिन्न होगी? शांति दो प्रकार की नहीं हो सकती। सब भेद अशांति में हो सकते हैं। शांति में कोई भेद नहीं हो सकता। हम इतने लोग यहां बैठे हैं, हम सब विचार करेंगे, तो हमारे विचार अलग-अलग होंगे। लेकिन हम सब निर्विचार हो जाएं, ध्यान में चले जाएं, तो हमारी अवस्था अलग-अलग नहीं होगी, बिल्कुल एक हो जाएगी। विचारों के कारण भेद हो सकता है। मैं कुछ और सोचूंगा, आप कुछ और सोचेंगे। और अगर हम दोनों ही न सोच रहे हों, कुछ भी न सोचते हों, तो भेद क्या होगा? भिन्नता क्या होगी? फिर कोई भेद नहीं रह जाता। फिर कोई भिन्नता नहीं रह जाती। जीवन में जो भी सत्य है, जीवन में जो भी सुंदर है, जीवन में जो भी शिव है, वहां कोई भी भेद नहीं रह जाता। और धर्म से ज्यादा शुद्ध और सुंदर और सत्य कुछ भी नहीं है। धर्म के जगत में कोई भी भेद नहीं है। इसलिए यह मत पूछिए कि कौन सा धर्म श्रेष्ठ है?
क्योंकि जब आप यह पूछते हैं तो आप धर्म के बाबत नहीं पूछ रहे हैं, आप पूछ रहे हैंः हिंदू, मुसलमान, जैन, ईसाई, बौद्ध, कौन श्रेष्ठ है?
ये सब बीमारियों के नाम हैं, ये धर्म के नाम नहीं हैं। धार्मिक आदमी न हिंदू होता है, न मुसलमान होता है, न जैन होता है। धार्मिक आदमी तो बस धार्मिक होता है। उसकी लड़ाई धर्मों से नहीं होती, उसकी लड़ाई अधर्म से होती है। वह असत्य से लड़ता है, घृणा से लड़ता है, क्रोध से लड़ता है। धर्मों से नहीं लड़ता--हिंदू से और मुसलमान से और ईसाई से उसकी लड़ाई नहीं होती, उसके लिए सवाल ही नहीं उठता कि कौन श्रेष्ठ है! उसके लिए चुनाव भी नहीं है कि किसी को चुने कि इनमें कौन श्रेष्ठ है! यह सवाल नहीं है। सवाल तो यह है कि वह अंधेरे से कैसे ऊपर उठे? वह प्रकाश की तरफ कैसे जाए? वह आनंद की तरफ, वह शांति की तरफ, स्वास्थ्य की तरफ कैसे जाए? वह धार्मिक कैसे हो सके? तो मैं कहूंगा, धर्म श्रेष्ठ है अधर्म से। लेकिन कोई धर्म किसी दूसरे धर्म से श्रेष्ठ नहीं है। वह तो सभी एक सी बीमारियां हैं। और मनुष्य जितना रुग्ण होता जाता है, उतनी उन बीमारियों की संख्या बढ़ती चली जाती है।
ऐसा भी हो सकता है, ऐसा भी दुर्भाग्य का दिन आ सकता है कि पृथ्वी पर उतने ही धर्म हो जाएं जितने आदमी हैं। ऐसा हो सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। इसमें कोई अड़चन नहीं है। लेकिन वह दिन सौभाग्य का दिन नहीं होगा। दिन तो वह सौभाग्य का होगा कि दुनिया के सारे धर्म मिट जाएं, धार्मिकता शेष रह जाए--अनाम धार्मिकता, बिना विश्लेषण की धार्मिकता। बिना संप्रदाय के, बिना मंदिर के, बिना चर्च के।
एक धार्मिक आदमी दुनिया में पैदा हो जाए, धर्म न रह जाएं। धर्म मिट जाने चाहिए और धार्मिक आदमी बच जाना चाहिए। लेकिन उसकी दिशा में कुछ और ही कदम उठाने पड़ेंगे। यह चुनाव नहीं करना पड़ेगा कि कौन श्रेष्ठ है? मत पूछिए मुझसे कि कौन सी बीमारी श्रेष्ठ है? इससे कोई मतलब नहीं है। क्या कोई बीमारी चुननी है आपको कि हम कैंसर चुनें, कि टी बी चुनें, कि मलेरिया चुनें, कि प्लेग चुनें, क्या चुनें? नहीं बीमारी नहीं चुननी है, स्वस्थ्य होना है। और स्वस्थ्य होने के लिए सभी बीमारियां छोड़ देनी आवश्यक हैं। धार्मिक होने के लिए सभी धर्मों से मुक्त हो जाना आवश्यक है।
आज तक यह नहीं हो सका। इसलिए पृथ्वी धार्मिक नहीं हो पाई। और अगर आगे
भी मनुष्य-जाति के लोग एक-एक धर्म से चिपके रहेंगे और जकड़े रहेंगे, तो

दुनिया धार्मिक नहीं हो सकेगी। क्यों? क्योंकि जो लोग अपने को धार्मिक समझते हैं, वे आपस में लड़ते हैं, कटते हैं, परेशान होते हैं। और अधर्म के कोई भी संप्रदाय नहीं हैं, यह आपको पता है? अधर्म का कोई संप्रदाय आपने देखा हो, पूना में कोई मंदिर है अधार्मिकों का? कोई चर्च है? कोई संगठन है उनका? अधर्म इकट्ठा है। और धर्म का खेमा विभाजित है, खंडित है, टूटा हुआ है। तो धर्म के नाम पर एक धार्मिक दूसरे धार्मिक से लड़ने में अपनी शक्ति गंवा देता है। और अधर्म जीतता चला जाता है। क्योंकि अधर्म से लड़ने की ताकत इकट्ठी भी नहीं हो पाती।
दुनिया में अधर्म जीतता चला गया है, क्योंकि धार्मिक की ताकत आपस में नष्ट हो जाती है। ईसाई मुसलमान से लड़ रहा है, हिंदू जैन से लड़ रहा है, बौद्ध किसी और से लड़ रहा है। कोई किसी और से लड़ रहा है। उनके सारे शास्त्री पंडित विवाद में लगे हुए हैं, उनके संन्यासी एक-दूसरे के खंडन में लगे हुए हैं, वे एक-दूसरे के खिलाफ झंडा लिए हुए खड़े हैं। एक मंदिर दूसरे चर्च के विरोध में खड़ा हुआ है। और अधर्म, अधर्म रोज आगे बढ़ता जा रहा है। क्योंकि इन बेचारे धार्मिकों को पहले अपने बीच लड़ने से फुर्सत मिले, तो ये अधर्म से लड़ने की कोई कोशिश करें। अधर्म की ताकत को जिताने वाले लोग, आपस में लड़ने वाले धार्मिक लोग हैं? और धर्म का क्या संबंध हो सकता है लड़ाई से, झगड़े से, विवाद से? कोई संबंध नहीं हो सकता है। लेकिन यह अब तक मनुष्य के जीवन में आई हुई दुर्घटना है। और अभी भी हम यही पूछे चले जाते हैं।
अगर किसी आदमी का ईसाई मत से मन भर जाता है, तो वह हिंदू हो जाता है। कोई हिंदू होने से ऊब जाता है, तो ईसाई हो जाता है। यह बीमारियां बदलना है, यह कोई कनवर्जन नहीं है। यह कोई धार्मिक होने का रास्ता नहीं है। यह वैसे ही है जैसे एक आदमी, किसी अरथी को मरघट ले जाते हैं, एक कंधे पर अरथी रखे- रखे एक कंधा थक जाता है, सो जाता है, अरथी दूसरे कंधे पर रख लेते हैं, थोड़ी सी बदलाहट हो जाती है, थोड़ा आराम मिल जाता है। थोड़ी देर बाद दूसरा कंधा दुखने लगता है, फिर कंधा बदलने की जरूरत आ जाती है।
कंधे नहीं बदलने हैं। और धर्मों में कोई चुनाव नहीं करना है। सभी धर्मों को एक साथ चित्त विदा दे दें। तो पहली बार वह मुक्ति उपलब्ध होती है जहां से धर्म की यात्रा शुरू हो सकती है। क्योंकि उसके बाद लड़ाई अधर्म से रह जाती है, धर्मों से नहीं रह जाती। तब सारा जीवन अधर्म से संघर्ष करने में संलग्न हो सकता है। अधर्म और धर्म के बीच चुनिए, धर्मों बीच नहीं।
एक ही अधर्म है, और एक ही धर्म है। उसके बीच चुनाव करिए, वहां खोजिए, वहां बदलाहट करिए। वहां परिवर्तन हो जाए, वहां जीवन रूपांतरित हो, तो कोई फल ला सकता है।
शायद मेरी बात सुबह वे मित्र नहीं समझ पाए। वे शायद यह समझे कि तीन सौ धर्मों में से किसी का पक्षपाती मैं भी हूं, और उसका प्रचार करने आया हूं। तो वे गलत समझ गए हैं। वे और तीन दिन में पूरी बात सुनेंगे, तो उनको ख्याल आ जाएगा कि इसमें चुनाव करने की कोई भी जरूरत नहीं है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा हैः प्रेम दुख है, प्रेम विरह है, फिर भी इनसान उसे छोड़ क्यों नहीं देता है?

किसने आपको कहा कि प्रेम दुख है? किसने आपको कहा कि प्रेम विरह है? प्रेम ने अब तक कोई दुख नहीं जाना। प्रेम ने अब तक कोई विरह नहीं जानी। और जिसने दुख जाना होगा, वह प्रेम न रहा होगा। और जिसने विरह जानी होगी, वह प्रेम न रहा होगा। प्रेम ने तो आज तक दुख जाना ही नहीं। प्रेम के अतिरिक्त आनंद को कोई भी नहीं जानता है।
लेकिन जिनको हम प्रेमी कहते हैं, वे दुखी दिखाई पड़ते हैं। इससे प्रेम गलत नहीं होता, इससे यही पता चलता है कि जिसको हम प्रेम समझते हैं, वह प्रेम न होगा। यह प्रेम छोड़ने का सवाल नहीं है, प्रेम है ही नहीं, यह जानने का सवाल है। और प्रेम को पाना है। छोड़ कर भाग नहीं जाना है।
यह मामला वैसा है, एक गांव में एक बहुत अदभुत संन्यासी गया। संन्यासी
के पास उस गांव का एक युवक मिलने आया। और उस युवक ने कहा कि मुझे परमात्मा

को पाना है। मुझे कोई रास्ता बता दें। उस संन्यासी ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा और उससे पूछा, तुमने कभी प्रेम किया है? वह युवक तो धार्मिक था, और धार्मिक लोग तो प्रेम से दूर ही रहते हैं। वह भी दूर ही रहा था। उसने कहा कि कहां की फिजूल की सांसारिक बातें आप छेड़ते हैं? प्रेम-व्रेम मैंने कभी नहीं किया है। मुझे तो परमात्मा को पाना है। तो संन्यासी ने कहाः फिर भी शायद थोड़ा-बहुत कभी किसी को प्रेम किया हो? याद करो, कोशिश करो। उस आदमी ने कहा कि मैंने कभी प्रेम नहीं किया। मैं कसम खाकर कहता हूं कि मैंने कभी प्रेम नहीं किया, मुझे तो परमात्मा को पाना है। मुझे कहां के बंधन में डालने की बात आप पूछते हैं? वह संन्यासी उदास हो गया, और उसने कहा कि फिर मैं कुछ भी नहीं कर सकूंगा, क्योंकि तुमने अगर किसी को भी प्रेम किया होता, तो उस प्रेम को इतना विकसित किया जा सकता था कि वह परमात्मा का द्वार बन जाता। लेकिन तुमने कभी प्रेम ही नहीं किया। तो तुम्हारे हृदय के पास कोई द्वार ही नहीं है, जहां से प्रार्थना और प्रभु प्रवेश पा सके। तो मैं असमर्थ हूं, तुम जाओ कहीं और।
प्रेम ही जिसने नहीं किया, वह परमात्मा तक पहुंचने का कोई मार्ग नहीं
पा सकता। माना कि आदमियों के लिए तय किया गया प्रेम वैसा ही है जैसे अपने मकान की खिड़की से झांका गया आकाश। लेकिन वह आकाश झूठा नहीं है, जो खिड़की में से दिखाई पड़ता है। आपकी खिड़की छोटी हो सकती है, लेकिन जो आकाश वहां से दिखाई पड़ता है, वह झूठा नहीं है। और अगर खिड़की के कारण पूरा आकाश न दिखाई पड़ता हो, तो खिड़की को बड़ा करिए। ताकि पूरा आकाश दिखाई पड़े, खिड़की को इतना बड़ा करिए कि खिड़की मिट जाए और आकाश ही रह जाए, कोई दीवाल न रह जाए। लेकिन खिड़की को बंद मत कर लेना, क्योंकि खिड़की से आकाश छोटा दिखाई पड़ता है। तो खिड़की बंद कर लें, दीवाल अंदर कर लें, अंदर बैठ जाएं, फिर बिल्कुल भी आकाश दिखाई नहीं पड़ेगा।
प्रेम अकेला झरोखा है, जहां से मनुष्य परमात्मा की ओर उठता है। लेकिन प्रेम का झरोखा छोटा है। उससे बहुत छोटा सा परमात्मा दिखाई पड़ता है। प्रेमी में जो दिखाई पड़ता है, वह परमात्मा ही है। लेकिन खिड़की से देखा गया परमात्मा। बहुत छोटा दिखाई पड़ता है। इस कारण प्रेम को मत तोड़ देना, क्योंकि इस तरह तो द्वार ही बंद हो जाएगा जहां से और बड़े परमात्मा को खोजा जा सकता था। उस द्वार को बड़ा करना। प्रेम को बड़ा करना। प्रेम इतना बड़ा हो जाए कि प्रेमी के पार निकल जाए, प्रेमी को पार कर जाए। प्रेम इतना बड़ा हो जाए कि उसे कोई भी न रोक सके। वह बड़ा से बड़ा होता चला जाए। धीरे-धीरे सभी उसके घेरे में समा जाएं। वह सबको पार कर जाए, सबके आगे निकल जाए। जिस दिन प्रेम इतना बड़ा हो जाता है कि उसकी कोई सीमा नहीं रह जाती, उसी दिन प्रेम प्रार्थना बन जाता है।
प्रेम में दुख नहीं है, प्रेम की सीमा में दुख है। और प्रेम की सीमा तोड़नी है।
लेकिन नासमझी चलती रही है बहुत वर्षों से। नासमझी ऐसी चलती रही है कि प्रेम को ही तोड़ दो। आंख में कभी-कभी धूल चली जाती है, आंख में तकलीफ होती है, तो आंख को फोड़ दो, वे समझाने वाले ऐसा कहते हैं। वे समझाने वाले यह कहते हैं कि पैर में जंजीर पड़ जाती है, तो पैर ही काट डालो। वे समझाने वाले यह कहते हैं, नाक पर मक्खी बैठ जाती है, तो नाक काट डालो। क्योंकि नाक बड़ी गड़बड़ थी, उस पर मक्खी को बैठने के लिए जगह मिल जाती है। अवसर मिल जाता है। न होगी नाक, न बैठेगी मक्खी।
तो वे कहते हैं कि प्रेम के कारण सीमाएं बंध जाती हैं, तो प्रेम ही छोड़ दो। क्योंकि न होगा प्रेम, न बनेंगी सीमा। खिड़की में से झांकते हैं आकाश सीमित हो जाता है। तो खिड़की बंद कर दो। न होगी खिड़की, न होगा आकाश सीमित। लेकिन बड़ी भूल भरी दलील है यह, इस भूल भरी दलील के कारण यह हुआ कि दुनिया में परमात्मा तो आया ही नहीं, प्रेम भी चला गया। एक तर्क का यह परिणाम हुआ है, इस फॉल्सियस, इस झूठे तर्क का यह परिणाम हुआ कि परमात्मा तो दूर हो गया, प्रेम भी समाप्त हो गया। आज जमीन पर न परमात्मा है, न प्रेम है। आदमी का प्रेम भी खत्म हो गया है, वह भी समाप्त हो गया है, वह भी अब नहीं है। उसने वह खिड़की भी बंद कर ली है। अब अपने घर के भीतर बंद होकर बैठ गया है, अब वह छाती

पीट रहा है, वह रो रहा है कि मैं परमात्मा को कहां से पाऊं? और उसे पता नहीं है कि जिन द्वारों से परमात्मा मिल सकता था उन्हीं को वह बंद करके बैठ गया है। तो परमात्मा नहीं पाया जा सकता। फिर वह चाहे भागे जंगलों में, वह चाहे नग्न हो जाए, चाहे वह भूखा मरे, चाहे वह कुछ भी करे, गलाए, शरीर को सताए, धूप-ताप सहे, कांटों में लेटे, कुछ भी करे, प्रेम की खिड़की के अतिरिक्त परमात्मा तक जाने का न कभी कोई द्वार था और न कभी कोई द्वार हो सकता है। लेकिन प्रेम के शत्रु रहे हैं तथाकथित धार्मिक लोग। तथाकथित साधक लोग प्रेम के शत्रु रहे हैं। क्यों यह शत्रुता पैदा हो गई है? यह शत्रुता इसलिए पैदा हो गई है, दो कारणों से। एक तो प्रेम जिसे उन्होंने समझा वह प्रेम नहीं था। मोह को प्रेम समझा, पजेशन को, मालकियत को प्रेम समझा। किसी को अपनी मुट्ठी में बंद कर लेने को प्रेम समझा। किसी को परतंत्र कर लेने को प्रेम समझा। सब तरफ से जिसे प्रेम किया, उसके आस-पास दीवाल घेर लेने को प्रेम समझा। और हमें पता ही नहीं है कि प्रेम जब किसी की परतंत्रता बनता है तो उसी क्षण प्रेम समाप्त हो जाता है। इस पृथ्वी पर कोई भी व्यक्ति, कोई भी आत्मा परतंत्रता स्वीकार करने को राजी नहीं है। चाहे वह आपकी पत्नी हो, चाहे आपका पति हो, चाहे आपका बेटा हो, चाहे आपका मित्र हो।
इस पृथ्वी पर कोई भी चेतना परतंत्रता स्वीकार करने को राजी नहीं है।
वह चेतना का धर्म नहीं है, वह चेतना का स्वभाव नहीं है। चेतना चाहती है स्वतंत्रता। और जिसको आप प्रेम कहते हैं, वह लाता है परतंत्रता। आप भी परतंत्रता लाते हैं और जिसे आप प्रेम करते हैं वह भी आपके लिए परतंत्रता लाता है। आप दोनों एक-दूसरे को घेर कर उसके मालिक हो जाना चाहते हैं। फिर इस मालकियत से दुख शुरू होता है, इस मालकियत से पीड़ा शुरू होती है, इस मालकियत से कष्ट शुरू होता है। फिर हम गाली देना शुरू करते हैं कि प्रेम बड़ा जंजाल है, इस प्रेम के बाहर हो जाना चाहिए, प्रेम छोड़ देना चाहिए। नहीं साहब! प्रेम जंजाल नहीं है। और न प्रेम दुख है, और न पीड़ा है। प्रेम के नाम से जो परतंत्रता आप थोप रहे हैं एक-दूसरे के ऊपर, वह पीड़ा है, वह जंजाल है, वह दुख है। प्रेम को बचाइए और परतंत्रता को जाने दीजिए। खिड़की को तोड़िए और आकाश को देखिए। परतंत्रता छोड़िए। अगर प्रेम के पूरे आनंद को उपलब्ध होना है, तो न परतंत्रता लादिए और न परतंत्रता स्वीकार करिए। प्रेम को एक मुक्तता, एक स्वतंत्रता में दिशा और आयाम मिले, तो प्रेम निरंतर बड़ा होता चला जाता है। बहुत जल्दी प्रेम प्रेमी से पार हो जाता है, प्रेमी का अतिक्रमण कर जाता है। बहुत शीघ्र वह सारी सीमाओं को छोड़ कर ऊपर उठने लगता है और असीम के निकट पहुंचने लगता है। लेकिन हम तो उसे बांध कर घेरे में रख लेना चाहते हैं।
जैसे किसी के घर में फूल खिल जाए और वह जल्दी से फूल को अपने घर के भीतर ले जाकर तिजोरियों में बंद कर ले। सोचे कि कहीं कोई फूल उसका ले न जाए। कहीं किसी की नजर न पड़ जाए उस फूल पर। कहीं ऐसा न हो कि फूल के सौंदर्य का वह अकेला मालिक न हो कोई दूसरे भी उसके देखने वाले हो जाएं, दूसरे भी मालिक हो जाएं। कहीं उस फूल का आनंद किसी और को न मिल जाए। तो जल्दी से जाकर अपनी तिजोरी में बंद कर देता है। बड़ा खुश होता है, बड़ा नाचता है तिजोरी के आस-पास कि मैंने बड़ी उपलब्धि कर ली, मैंने एक सुंदर फूल अपनी तिजोरी में बंद कर लिया। लेकिन उसे पता नहीं, जो खुले आकाश में खिला था, वह बंद तिजोरियों में मर जाता है। जो खुले आकाश में और खुले सूरज में प्राणवान था, वह बंद तिजोरियों में मृत हो जाता है। तिजोरी उसकी कब्र है। और जब वह चाबी से खोलेगा अपनी तिजोरी को, तो पाएगा, वहां तो वह मर गया जिसे वह बंद कर लाया था। तब फिर वह रोएगा और चिल्लाएगा और कहेगाः यह बड़ा जंजाल है, यह बड़ा दुख है, यह बड़ा विरह हो गया, यह बड़ी पीड़ा हो गई, यह बड़ी चिंता और संताप हो गया। तब वह कहेगा कि फूलों को प्रेम करना ही ठीक नहीं है, फूलों के सौंदर्य को देखना ही ठीक नहीं है, आंख बंद कर लो फूलों की तरफ। कभी फूलों की बगिया में मत जाना, निकल जाओ तो पीठ कर लेना। ऐसी जगह भाग जाओ जहां फूल न होते हों। जहां प्रेम न होता हो। वह आदमी यह नहीं देख रहा है कि फूल की गलती न थी। न फूल के सौंदर्य का कसूर था, न फूल को किए गए प्रेम की भूल थी। भूल थी तो यह थी कि उसका मालिक होना चाहा, जिसका कभी कोई मालिक

नहीं हो सकता है, उस मालकियत में सारी भूल हो गई। उस पजेशन में सारी भूल हो गई। उस परिग्रह में सारी भूल हो गई।
दुनिया स्वर्ग बन सकती है अगर प्रेम परिग्रह न बने। अगर प्रेम मालकियत न बने, तो दुनिया कुछ से कुछ हो जाए। लेकिन यह नहीं होता, और नहीं होने के कारण हम पीड़ा उठाते हैं। फिर पीड़ा का दोष अपने को देना चाहिए था कि मेरी कोई भूल थी, तो दोष प्रेम को देते हैं, दोष फूल को देते हैं जो तिजोरी में आकर मर गया और कष्ट देने लगा। दोष था हमारा, और हमने सरलता से उसे ट्रांसफर किया, उसे किसी और पर थोप दिया।
यह जो प्रेम का विरोध पैदा हुआ, पहला तो यह कारण था। और दूसरा कारण यह
था कि हजारों वर्षों से आदमी को यह समझाया गया है कि परमात्मा और संसार में एक बुनियादी विरोध है। वे शत्रु हैं दोनों। संसार और परमात्मा में कोई गहरी शत्रुता है। तो जो आदमी संसार को प्रेम करता है वह परमात्मा से वंचित रह जाएगा। यह दूसरी शिक्षा बड़ी खतरनाक साबित हुई। अगर परमात्मा का संसार से कोई भी विरोध है, तो या तो अब तक परमात्मा न बचता, या अब तक संसार न बचता। और वे दोनों बचे हुए हैं। और वे दोनों किसी गहरे तारतम्य में, किसी गहरी हार्मनी में जीते भी रहे हैं। उनके बीच विरोध नहीं हो सकता। सच तो यह है कि उनके बीच दो होने का भी सवाल नहीं, विरोध तो बहुत दूर की बात है। जो अज्ञानी को संसार जैसा दिखाई पड़ता है, वहीं ज्ञानी को परमात्मा हो जाता है। न तो कहीं कोई संसार है अलग, न कहीं कोई परमात्मा है। यही जीवन, यही पौधे, यही पशु, यही पक्षी, यही कंकड़ और पत्थर, जिस दिन प्रेम की पूरी आंख खुलती है परमात्मा में परिवर्तित हो जाते हैं। लेकिन जिन लोगों ने संसार और परमात्मा का विरोध खड़ा किया, और जिन्होंने कहा कि परमात्मा को पाना है तो संसार को छोड़ना पड़ेगा, उन सबको प्रेम के विरोध में शिक्षा देनी पड़ी, क्योंकि प्रेम संसार से जोड़ता है। और परमात्मा से जुड़ना है तो प्रेम छोड़ना पड़ेगा।
एक फकीर एक सुबह अपने झोपड़े के बाहर बैठा हुआ था। उसकी गोद में उसके बेटे का लड़का बैठा हुआ था। छोटा सा बच्चा और वह फकीर। दोनों अकेले हैं। उस बच्चे ने एक बड़ी अजीब बात पूछी। बच्चे अक्सर अजीब बातें पूछ लेते हैं। उस बच्चे ने अपने उस बूढ़े को पूछा कि दादा, एक बात मुझे तुमसे पूछनी है। मैंने सुना है कि तुम परमात्मा को बहुत प्रेम करते हो? उस बूढ़े ने कहाः हां, मैं उसे बहुत प्रेम करता हूं। उस लड़के ने पूछाः और आप मुझसे भी कई बार कहते हो कि मैं तुम्हें भी बहुत प्रेम करता हूं। उसने कहाः मैं तुम्हें भी बहुत प्रेम करता हूं। उस लड़के ने कहाः यह कैसे हो सकता है कि आप परमात्मा को भी प्रेम करो और मुझको भी?
उस बूढ़े को ख्याल आया कि जरूर कोई भूल हो गई है। उसने उस लड़के को धक्का देकर गोदी से अलग कर दिया और उसने कहाः दूर हट शैतान, परमात्मा को जो प्रेम करता है उसे सबका प्रेम छोड़ देना चाहिए। मैंने यह बात पढ़ी थी, लेकिन मुझे यह ख्याल नहीं आया। उसने उस बच्चे को धक्के देकर नीचे कर दिया। शायद उसने सोचा होगा, वह परमात्मा की आंखों में इस तरह ऊंचा उठ गया। शायद उसने सोचा होगा कि उसने परमात्मा के प्रेम को पा लिया। शायद उसने और सोचा होगा कि बड़ी साधना कर ली उसने, वह बड़े बंधनों के बाहर हो गया है। अगर ऐसा सोचा हो, तो वह आदमी पागल था। क्योंकि एक बच्चे को भी जो प्रेम नहीं कर सका, वह परमात्मा को कैसे प्रेम कर सकेगा? और एक बच्चे को जो धक्के देकर हटा सका अपनी गोदी से, ऐसी जिसके मन की कठोरता है, ऐसी जिसके मन की क्रूरता है, ऐसा जिसके मन में आक्रमण है, ऐसा जिसके मन में हिंसा है, वह परमात्मा को प्रेम कर सकेगा यह असंभव है।
परमात्मा को प्रेम करने वाले वे लोग नहीं हैं जो जीवन से अपने प्रेम
को खींच लेते हैं, बल्कि परमात्मा को प्रेम करने वाले वे ही लोग हैं जो जीवन भर अपने पूरे प्रेम को लुटा देते है। जीवन को प्रेम करने वाले लोग ही परमात्मा को प्रेम करने वाले लोग सिद्ध हो सकते हैं। जीवन से दूर, जीवन से भागने वाले लोग नहीं। जिनकी सामर्थ जीवन को भी प्रेम करने की नहीं है, वे परमात्मा को कैसे प्रेम कर सकते हैं?

मेरी दृष्टि में प्रेम न तो सांसारिक होता है और न आध्यात्मिक होता है। प्रेम शुरू होता है संसार से और पूर्ण होता है अध्यात्म पर। प्रेम शुरू होता है पड़ोसी से और पूर्ण होता है परमात्मा पर। प्रेम न तो सांसारिक है, न अध्यात्मिक। प्रेम तो संसार और परमात्मा के बीच का सेतु है, जहां से वे दोनों जुड़े हैं और एक हैं। इसलिए प्रेम बंधन नहीं। प्रेम से बड़ी कोई मुक्ति ही नहीं। इस जगत में वे ही लोग परम मुक्ति को अनुभव करते हैं जो परम प्रेम को उपलब्ध होते हैं।
इसलिए यह मत पूछिए कि प्रेम दुख है? अगर प्रेम ने आपको दुख दिया हो, तो सोच लेना ठीक से, आपने प्रेम नहीं जाना है। आपने प्रेम नहीं किया। आप प्रेम को उपलब्ध नहीं हो सके।
लेकिन कोई भी अपनी भूल नहीं देखना चाहता है। और किसी भी चीज पर भूल को थोप कर निर्दोष हो जाना चाहता है। प्रेम करने वालों ने तो कभी आज तक यह नहीं कहा कि प्रेम दुख है। किस प्रेम करने वाले ने कहा है?
क्राइस्ट एक गांव के पास से गुजरते थे। दोपहर थी घनी और तेज थी धूप।
और वे एक बगीचे में विश्राम करने को रुक गए। वह बगीचा एक वेश्या का बगीचा था। अगर क्राइस्ट कोई बने-बनाए संन्यासी होते, तो वेश्या के घर से कई कदम दूर से ही भाग गए होते। कहां वेश्या और कहां संन्यासी। लेकिन धूप थी तेज और घनी छाया थी उस वेश्या के भवन के बगीचे में। वे विश्राम करने को रुक गए। वह वेश्या थी, मेग्दलीन। उसने अपनी खिड़की से झांक कर देखा, एक बहुत सुंदर युवा, एक अपूर्व रूप से शांत व्यक्ति वहां लेटा है छाया में। उसने ऐसा सुंदर आदमी ही नहीं देखा था। एक सौंदर्य शरीर का भी होता है और एक सौंदर्य उससे भी गहरा। और जब वह गहरा सौंदर्य उपलब्ध होता है, तो शरीर की कुरूपता भी बह जाती है और भीतर से जैसे एक प्रकाश-दीप प्रकट होने लगता है... । उसने बहुत सुंदर लोग देखे थे, वह वेश्या ही थी। और उस देश की सबसे सुंदर वेश्या भी थी। बड़े सम्राट, और बड़े राजकुमार, और बड़े धनपति उसके द्वार पर भीख मांगते थे प्रेम की। लेकिन आज पहली दफा उसे लगा कि प्रेम की भीख अगर मुझे भी मांगनी पड़े, तो मैं भी मांग लूं।
वह अपने महल से बाहर निकली और जाकर क्राइस्ट से उसने कहाः युवा... युवक, क्या उचित न होगा कि तुम मेरे महल में चल कर विश्राम करो? लेकिन क्राइस्ट तब उठने को थे और विश्राम पूरा हो गया था। और उन्होंने कहा कि अब तो मेरे जाने का समय भी आ गया है। मैं विश्राम कर चुका। फिर कभी थकूंगा इस राह पर, तो जरूर तुम्हारे भवन में विश्राम करूंगा। और तुमने कहा कि मेरे भवन में आ जाओ, तो मैं आ ही गया। क्योंकि तुमने कहा तो बात पूरी हो गई। तुमने आग्रह किया तो बात पूरी हो ही गई। तुमने चाहा तो बात पूरी हो ही गई। फिर कभी आऊंगा तो जरूर रुकूंगा।
मेग्दलीन को यह बहुत अपमानजनक मालूम पड़ा। उसके द्वार से लोग लौट जाते थे। लेकिन वह तो आज तक किसी के द्वार पर गई ही नहीं थी। उसकी आंखों में आंसू आ गए। और उसने कहा कि नहीं, भीतर चलना ही होगा। क्या आप मेरे प्रति इतना प्रेम भी प्रकट नहीं कर सकते हैं कि मेरे घर में थोड़ी देर अतिथि हो जाएं?
तो क्राइस्ट ने मेग्दलीन को कहाः मेग्दलीन, बहुत लोग तेरे पास प्र्रेम करने आए होंगे, लेकिन मैं तुझसे कहता हूं कि मेरे अतिरिक्त उनमें से तुझे कोई भी प्रेम नहीं कर सकता। लेकिन तू जिस प्रेम को पहचानने की आदी हो गई है, शायद तू नहीं पहचान पा रही मेरे प्रेम को। किसी दिन हो सकता है कि तुझे दिखाई पड़े कि प्रेम क्या है। और उस दिन तू जाने कि कौन प्रेम कर सकता है।
जिस हृदय से घृणा विलीन हो गई हो, जिस चित्त से क्रोध समाप्त हो गया हो, जिस चित्त ने सबके मंगल की कामना को अपने हृदय में जगह दे दी हो, जो प्राण सबके लिए प्रार्थना से भर आए हों, वे ही तो प्रेम करने में समर्थ हैं। लेकिन हमारा हृदय तो एक के मंगलकामना से भी आपूरित नहीं होता है, जिन्हें हम प्रेम करते हैं उनका भी हम सिर्फ शोषण करते हैं, प्रेम नहीं। वे भी हमारी उपयोगिताएं... उनके द्वारा भी हमारा हित, अपना हित सधता है। अगर मुझे पता चल जाए कि जिसे मैं प्रेम करता हूं, उससे मेरा हित सधना बंद

हो गया, मेरा स्वार्थ पूरा होना बंद हो गया, तो मेरा सारा प्रेम हवाओं के झोकों की भांति विलीन हो जाएगा। सूखे पत्तों की भांति उड़ जाएगा। और मैं पच्चीस बहाने खोज लूंगा कि अब मैंने प्रेम करना क्यों बंद कर दिया है? प्रेम हमारा स्वार्थ है, मेरा स्वार्थ है। और अपने स्वार्थ के लिए मैं प्रेम करता हूं, प्रेम की बातें करता हूं, प्रेम के जाल रचता हूं। लेकिन स्वार्थ बांध लेता है। स्वार्थ मुक्त नहीं करता, स्वार्थ दुख देता है, स्वार्थ पीड़ा लाता है, चिंता लाता है, तो फिर हम प्रेम को दोष देते हैं। प्रेम था ही नहीं वह। प्रेम कभी कुछ मांगता ही नहीं, प्रेम सिर्फ देता है। प्रेम निरंतर दूसरे की हित-कामना है। प्रेम शोषण नहीं है, प्रेम की कोई मांग ही नहीं है। प्रेम कभी हाथ फैलाता ही नहीं, प्रेम हमेशा देता ही चला जाता है। प्रेम का आनंद इस तथ्य में है कि वह देने में समर्थ हो सका और कोई लेने को राजी हो सका।
लेकिन हमारा सारा प्रेम तो मांगता है, मांगता है, मांगता है, और मांगता चला जाता है। पति पत्नी से मांग रहा है; मां बेटे से मांग रही है; बहन बहन से; भाई भाई से; दोस्त दोस्त से, सब एक-दूसरे से मांग रहे हैं; सब एक-दूसरे के, एक-दूसरे से कुछ लेने को आतुर और उत्सुक हैं। वे जो मांग रहे हैं उसी से होगा उनका प्रेम। लेकिन उनसे नहीं, जिनको वे प्रेम जता रहे हैं। जो उन्होंने मांगा है मिल जाएगा और प्रेम तिरोहित हो जाएगा और हवा हो जाएगा। और तब प्रेम पीड़ा देता हुआ मालूम होगा, अगर नहीं मिलेगा वह जो चाहा गया था।
प्रेम कोई इच्छा नहीं है, प्रेम कोई वासना नहीं है। प्रेम से बड़ी कोई साधना नहीं है। क्योंकि प्रेम है दान; वह है बांटना। और वह चीजों का बांटना नहीं है, वह है हृदय का बांटना, स्वयं को बांटना।
तो जब भी कोई प्रेम में समर्थ हो पाता है अपने को बांटने में, तब वह उस आनंद को अनुभव करता है जिसकी हमें कोई खबर नहीं। वह उस सुख को जान लेता है जिसका हमें कोई पता ही नहीं। वह कृतार्थ हो जाता है, वह धन्य हो जाता है। उसी धन्यता में उसे पहली बार पता चलता है कि क्या है ग्रेटिट्यूड, क्या है अनुग्रह। उसी धन्यता में उसे पहली बार उसके हाथ आकाश की तरफ उठते हैं और परम सत्ता की ओर उसके प्राण झुकते हैं। उसी अनुग्रह में, प्रेम के अनुग्रह में पहली बार प्रार्थना का जन्म होता है। और प्रेम के अनुग्रह में ही पहली बार परमात्मा के मंदिर की सीढ़ियां स्पष्ट होनी शुरू हो जाती हैं। रवींद्रनाथ मरने को थे। और उन्होंने अपने अंतिम गीतों में एक गीत लिखा है, और उस गीत में लिखा है कि हे परमात्मा! तेरी पृथ्वी बहुत सुंदर थी, और तेरा संसार बहुत अदभुत था। जितना भी मैं प्रेम कर सका, उतना मैं आनंद पा सका। और अगर मैंने कोई कष्ट पाए हैं, तो वह मेरे प्रेम की कमी थी, वह तेरे संसार की कमी न थी। और मैं तुझसे प्रार्थना करता हूं कि मैं मुक्ति नहीं चाहता, और मैं कोई मोक्ष नहीं चाहता, मैं तो यही चाहता हूं कि तू मुझे इस योग्य समझना, इस योग्य बनाना कि मैं बार-बार लौट कर आऊं और तेरे संसार को प्रेम कर सकूं। वह घड़ी आ जाए एक दिन कि मेरा परिपूर्ण हृदय तेरे संसार के प्रति परिपूर्णता और प्रेम से भर जाए, उसी क्षण को मैं जान लूंगा कि मुक्ति मेरे द्वार आ गई है।
प्रेम जिस दिन पूर्ण होता है उसी दिन व्यक्ति पूर्ण मुक्त हो जाता है। प्रेम के विरोध में नहीं है मुक्ति, प्रेम में, प्रेम के भीतर ही है मुक्ति। प्रेम की शत्रुता में नहीं, प्रेम के प्रति पीठ करके नहीं। और चूंकि धर्म ने प्रेम का विरोध लिया है इसलिए धर्म संसार को उजाड़ने वाला सिद्ध हुआ, बनाने वाला नहीं। यह पृथ्वी स्वर्ग हो सकती थी, यह नरक हो गई है। क्योंकि जिस सूत्र से यह स्वर्ग हो सकती थी, धर्मों ने उसी का विरोध ले लिया। वह उसी के शत्रु होकर खड़े हो गए।
मैं प्रेम का विरोधी नहीं हूं। और मैं मानता भी नहीं कि कोई धार्मिक व्यक्ति प्रेम का विरोधी हो सकता है। कांटे होंगे कुछ, लेकिन वे कांटें प्रेम के कांटे नहीं हैं, वे कांटे किसी दूसरी चीज के हैं। अगर दूसरी चीज से मुक्त हुआ जा सकता है, और जितना उससे मुक्त होंगे, प्रेम उतना ही बड़ा होगा। लेकिन उन कांटों के कारण प्रेम को मत फेंक देना। अगर कांटे दूर भी न

हो सकें, तो भी प्रेम को मत फेंक देना। क्योंकि हजार कांटों में खिला हुआ गुलाब का एक फूल अगर कांटों में भी खिला हुआ है, तब भी फूल है और बहुत अदभुत है। कांटों के कारण गुलाब को उखाड़ कर घर के बाहर मत फेंक आना। कोशिश करना कि कांटों से बिना भी गुलाब का फूल पैदा हो सके। बिना कांटों का गुलाब भी होता है। बिना कांटों का प्रेम भी होता है। लेकिन अगर कांटें न फेंके जा सकें, तो भी मैं प्रार्थना करता हूं कि फूल को मत फेंक देना। क्योंकि वह घर जिसमें कांटों वाला गुलाब है, उस घर से बेहतर है जिसमें कोई गुलाब ही नहीं है। कांटे फेंके जा सकते हैं, साथ गुलाब भी फिंक जाता हो, तो फिर कांटे भी बचा लेना। वे कांटे भी प्यारे हैं जो गुलाब के साथ हैं। हां, यह हो सकता है कि कांटों से मुक्त हुआ जा सके और फूल गुलाब का पैदा किया जा सके। वैसा हो सके तो सौभाग्य, वह हमारी कामना होनी चाहिए, हमारी प्रार्थना कि वैसा हो सके। बिना कांटों के गुलाब घर में हो तो बहुत शुभ, लेकिन गुलाब ही न हो, उससे बेहतर तो कांटों का गुलाब ही मुझे स्वीकृत है। प्रेम की पीड़ा भी स्वीकार है मुझे अगर बिना पीड़ा के प्रेम न हो सके। लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि बिना पीड़ा के प्रेम होता है, हो सकता है। सच तो यह है कि प्रेम जब भी होता है बिना पीड़ा के ही होता है। पीड़ा हमारी भूल है। पीड़ा हमारी भूल है, वह प्रेम की भूल नहीं है।
इसे थोड़ा ध्यान में लेंगे तो जीवन में प्रेम और परमात्मा के बीच का विरोध नष्ट हो सकेगा। संसार और सत्य के बीच की खाई टूट सकेगी। और तब ज्यादा निर्विघ्न मन, ज्यादा सहज, ज्यादा सरलता से जीवन की धारा परमात्मा के सागर की तरफ बह सकेगी। जीवन बह रहा है निरंतर प्रेम की तरफ। उसे रोकना मत, उसे बहने देना। और यह कोशिश करना कि वह सब प्रेम धीरे-धीरे प्रार्थना में परिवर्तित होता चला जाए, वह सब प्रेम धीरे-धीरे पार्थिव को पार करता चला जाए, वह सब प्रेम धीरे-धीरे सारी सीमाओं को छोड़ता हुआ ऊपर असीम की तरफ उठता चला जाए। जब प्रेम असीम को उपलब्ध हो जाता है, तो व्यक्ति धन्यता को उपलब्ध हो जाता है। वह जीवन की परम उपलब्धि है।

एक अंतिम छोटा सा प्रश्न और फिर मैं अपनी बात पूरी करूंगा।
पांच-छह मित्रों ने पूछा हैः श्रद्धा और विश्वास के लिए। जिसके संबंध में मैंने सुबह बात की।
एक मित्र पूछते हैंः बुद्धि जहां काम नहीं करती, वहां क्या करें?

वहां कुछ भी मत करें। वहां चुप रह जाएं। बुद्धि जहां काम नहीं करती, वहां चुप रह जाएं, वहां मौन हो जाएं, वहां साइलेंट हो जाएं। इतना सौभाग्य की बात यह है कि कहीं जाकर बुद्धि काम नहीं करती, तो चुप हो जाएं, मौन हो जाएं, वहीं ध्यान शुरू हो जाएगा।
लेकिन वे कहते हैं कि जहां बुद्धि नहीं काम करती, वहां हम श्रद्धा करेंगे, वहां हम विश्वास करेंगे।
क्या आप सोचते हैं श्रद्धा और विश्वास बुद्धि के काम नहीं हैं? किस चीज से श्रद्धा करते हैं आप, किस चीज से विश्वास करते हैं? बुद्धि, श्रद्धा और विश्वास बुद्धि के बाहर नहीं हैं, बुद्धि के भीतर हैं। बुद्धि के भीतर हैं और बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण भी नहीं हैं। बुद्धि के भीतर है और बहुत अबुद्धि के सूचक हैं। जो आदमी विश्वास करता है, वह विश्वास कैसे करता है, कहां से करता है? कैसे कर लेता है विश्वास? बुद्धि से ही दलीलें जुटा लेता है विश्वास के लिए। कहता है कि महापुरुषों ने कहा है, कि वे क्या असत्य कह सकते हैं? कहता है कि शास्त्रों में लिखा है, वेद में लिखा है, कुरान में लिखा है, बाइबिल में लिखा है, तो क्या झूठ हो सकता है? महावीर ने कहा, बुद्ध ने कहा, कृष्ण ने कहा, तो क्या गलत हो सकता है? ये बातें कौन कर रहा है? ये दलीलें कौन दे रहा है? यह गीता, बाइबिल, कुरान का उद्धरण कौन दे रहा है? यह बुद्धि नहीं दे रही? यह कौन दे रहा है?
बड़े मजे की बात है कि ईश्वर के पक्ष में जो दलीलें दी जाती हैं वे बुद्धि की दलीलें नहीं। और विपक्ष में जो दलीलें दी जाती हैं वे बुद्धि की दलीलें हैं! ईश्वर का खंडन कोई करता है, तो हम कहते हैं, बुद्धि का उपयोग

नहीं है इसमें, बुद्धि की जरूरत नहीं है। और जब कोई ईश्वर का समर्थन करता है, तो हम बिल्कुल चुपचाप बैठे रहते हैं कि बिल्कुल ठीक कहा जा रहा है। समर्थन भी बुद्धि का है, विरोध भी बुद्धि का है। मनुष्य जो भी कह सकता है और जिस बात का भी पक्ष ले सकता है और जिसके लिए विपक्ष में हो सकता है, वह सब बुद्धि का है। जहां भी पक्ष है, जहां भी विपक्ष है, वह सब बुद्धि का है। लेकिन जो हमारे पक्ष में होता है, उसको हम कहते हैं कि यह बुद्धि के ऊपर की बात है। और जो हमारे विपक्ष में होता है, वह फिर हमारे लिए बुद्धि के नीचे की बात हो जाती है। वह कोरा तर्क हो जाता है। वह सिर्फ आर्ग्युमेंट हो जाता है। वह सिर्फ विवाद हो जाता है।
सभी तर्क हैं, चाहे वे पक्ष में हों और चाहे विपक्ष में। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। आप ईश्वर को मानते हैं, आत्मा को मानते हैं, फलां करते हैं, ढिकां मानते हैं, वह सबका सब बुद्धि का है।
बुद्धि से कुछ भी मत मानिए, यही मैं कह रहा हूं। नास्तिक को भी मत मानिए, आस्तिक को भी मत मानिए। इसी को मैं कह रहा हूं कि श्रद्धा मत करिए, विश्वास मत करिए। अगर बुद्धि के ऊपर उठना है, तो छोड़िए श्रद्धा को, छोड़िए विश्वास को।
लेकिन आपको ऐसा लगता है कि विश्वास करेंगे तो बुद्धि के ऊपर उठेंगे।
जो विश्वास कर लेता है वह बुद्धि के ऊपर कभी नहीं उठ सकता। उसने तो विश्वास कर लिया, उसकी बुद्धि ने तो मान लिया जो उससे कहा गया। उसकी बुद्धि ने तो खोज न की उसकी जिस तक बुद्धि पहुंच नहीं सकती थी। मत करिए विश्वास; खोजिए। खोजते चले जाइए। वह जगह जरूर आ जाएगी जहां बुद्धि अवाक हो जाएगी, ठगी रह जाएगी। कोई उत्तर न सूझेगा बुद्धि को, बुद्धि की सीमा आ जाएगी। और बुद्धि कहेगी, इसके आगे शून्य है, इसके आगे मुझे रास्ता नहीं मिलता, इसके आगे मुझे उत्तर नहीं मिलता। आ गई वह जगह जहां बुद्धि के ऊपर उठा जा सकता है। लेकिन वहां अगर फिर भी विश्वास पकड़ लिया, तो फिर आप वापस अपने घर में लौट आए। फिर अपने घेरे में आ गए हैं।
आने दीजिए उस बिंदु को जहां जाकर बुद्धि असमर्थ हो जाए। टूट जाए टकरा
कर और कहने लगे कि बस अब मैं असमर्थ हो गई, अब मुझे आगे जाने का मार्ग नहीं मिलता। जब बुद्धि असमर्थ हो जाती है आगे जाने में, तब चेतना बुद्धि का पीछा छोड़ती है और आगे जाती है, ऊपर उठती है। जब शब्द असमर्थ हो जाते हैं, तो चेतना निशब्द में प्रवेश करती है। जब तर्क व्यर्थ हो जाते हैं और तर्कों से कुछ भी खोजे नहीं मिलता, तब फिर अतर्क में प्रवेश होता है। लेकिन वह प्रवेश श्रद्धा में प्रवेश नहीं है, वह प्रवेश श्रेष्ठ और विलीन में प्रवेश नहीं है, वह प्रवेश तो ज्ञान में प्रवेश है। वह प्रवेश तो साक्षात्कार में प्रवेश है। वह प्रवेश तो परम सत्य का सीधा साक्षात्कार है।

कुछ मित्रों ने पूछा है कि अगर हम विश्वास न करें, श्रद्धा न करें, फिर
तो हम बुद्धि में ही ठहरे रह जाएंगे?

आप विश्वास करके भी बुद्धि में ही ठहरे रहते हैं, उससे कहीं आगे नहीं जाते। आप हिंदू हैं, मुसलमान हैं, बुद्धि के द्वारा नहीं तो और किस चीज के द्वारा हिंदू हैं? किस चीज के द्वारा मुसलमान हैं? एक बच्चा हिंदू के घर में पैदा हुआ और मुसलमान के घर में रख दिया जाए, उसकी बुद्धि को बचपन से ही मुसलमानी बातें सुनाई पड़ेंगी, मुसलमानी सिद्धांत सुनाई पड़ेंगे, वह जवान होकर मुसलमान हो जाएगा। एक बच्चा हिंदू के घर में है वह हिंदू हो जाएगा। बुद्धि जो सुनती है वही हो जाती है।
मैं यही कह रहा हूं कि बुद्धि जो सुनती है उसके साथ ही सहमत न हो जाएं, तृप्त न हो जाएं। नहीं तो बुद्धि के भीतर ही समाप्त हो जाएंगे। और बहुत अज्ञात जानने को है जो बुद्धि के ऊपर उठ कर ही जाना जाता है, जो बुद्धि के अतिक्रमण से ही जाना जाता है, वह नहीं जाना जा सकेगा। लेकिन आदमी को धोखा दिया जाता रहा, उससे कहा जाता है कि श्रद्धा बुद्धि के ऊपर ले जाती है। विश्वास बुद्धि के ऊपर ले जाता है। न श्रद्धा ले जाती है, न अश्रद्धा ले

जाती है; न विश्वास ले जाता है, न अविश्वास ले जाता है। ये कोई नहीं ले जाते हैं।
बुद्धि के ऊपर तो केवल वही व्यक्ति जाता है जिसकी खोज चरम है। जो निरंतर खोज करता चला जाता है और उस जगह पहुंच जाता है जहां पाता है कि अब बुद्धि कुछ भी उत्तर नहीं दे पाती।
उत्तर नहीं हैं, प्रश्न भर रह जाते हैं। प्रश्न उठता है, ईश्वर है, और बुद्धि मौन रह जाती है, कोई उत्तर नहीं देती। उत्तर दे सकती थी अगर कोई विश्वास पकड़ लिया होता, तो फौरन बुद्धि उत्तर दे देती कि हां, ईश्वर है। और गीता के दो श्लोक भी साथ में सुना देती कि लो ये प्रमाण हैं। या अगस्तीन के दो शब्द बोल देती कि लो ये प्रमाण हैं। अगर बुद्धि ने विश्वास किया होता, तो वह कह देती, ईश्वर है, कुरान में लिखा है, बाइबिल में लिखा है। अगर बुद्धि ने अविश्वास किया होता, तो कह देती, नहीं है ईश्वर। दास कैपिटल में लिखा, लेनिन ने लिखा, मार्क्स ने लिखा, नहीं है कहीं कोई ईश्वर। बुद्धि उत्तर दे देती।
आस्तिक के उत्तर भी बुद्धि के उत्तर है, नास्तिक के उत्तर भी बुद्धि
के उत्तर हैं। धार्मिक आदमी का उत्तर बुद्धि का उत्तर होता ही नहीं। लेकिन वह तभी उत्तर मिलता है, जब आप अपने उत्तर देने बंद कर देते हैं। सीखे हुए तोतों के उत्तर बंद कर देंगे, तब वह उत्तर उपलब्ध होगा जो आपके भीतर से आता है। उसके लिए निष्प्रश्न हो जाना, निरुत्तर हो जाना जरूरी है। सब खत्म हो जाए विश्वास-अविश्वास और आप चुपचाप खड़े रह जाएं, और आगे आपके शून्य रह जाए, कुछ भी न रह जाए। उसी शून्य में वह सुना जाता है जो परमात्मा का है, वह देखा जाता है जो सत्य का है, वह अनुभव किया जाता है जो प्रेम का है। उसके पहले नहीं। उसके पहले जरा भी नहीं। उसके पहले कुछ भी नहीं हो सकता। उस टोटल वैक्यूम में, उस पूर्ण शून्य के सामने जब बुद्धि खड़ी होती है, तभी निरस्त हो जाती है, तभी गिर जाती है और समाप्त हो जाती है। फिर उसका कोई सहारा नहीं रह जाता जिसके आधार पर वह खड़ी रह जाए। बेसहारा हो जाती है। फिर बेसहारा बुद्धि विलीन हो जाती है, निरालंब हो जाती है, आलंबन खो देती है, आधार खो देती है, उसकी भूमि खो जाती है। फिर, फिर वह पैदा होता है, उसकी शुरुआत होती है, उसका प्रारंभ होता है जो बुद्धि के अतीत है, वह जो ट्रांसेडेंटल है, वह जो अतीत है, जो ऊपर है, और जो पार है, उसकी शुरुआत होती है। लेकिन वह किरण तभी फूटेगी जब बुद्धि के सब उत्तर बंद हो जाएं।
आस्तिक यह तो कहता है कि नास्तिक बुद्धिवादी है और खुद को समझता है कि
हम बुद्धि के अतीत हो गए हैं। आस्तिक भी बुद्धिवादी है और नास्तिक भी। धार्मिक आदमी बुद्धिवादी नहीं होता, लेकिन उसके होने के लिए बुद्धि की अंतिम सीमा तक जाना जरूरी है, तभी अतिक्रमण हो सकता है। सौ डिग्री तक पानी गर्म होता है, फिर वह भाप बन जाता है। कोई कहे कि हम निन्यानबे डिग्री पर भाप बनाएंगे, अट्ठानबे डिग्री पर बनाएंगे, तो सपने में बना सकता है, सच्चाई में नहीं बना सकता। भाप तो सौ डिग्री पर बनेगी। सौ डिग्री तक पानी पानी ही रहेगा। सौ डिग्री पर पहुंच कर पानी जवाब दे देगा कि इसके आगे गर्मी मैं नहीं सह सकता हूं। इसके आगे अगर गर्मी सहनी है तो भाप बनानी पड़ेगी। अब पानी काम नहीं देगा। तो भाप बननी शुरू हो जाएगी।
बुद्धि की भी एक सीमा है, लेकिन आप इसके पहले ही रुक जाते हैं, अट्ठानबे डिग्री पर। अट्ठानबे तो बहुत दूर की बात है, दो ही डिग्री पर रुक जाते हैं। बच्चा पैदा नहीं हुआ कि उसकी बुद्धि की कोई खोज ही शुरू नहीं होती कि उसको समझा देते हैं, ईश्वर है, मान लो; चलो यह मंदिर है, मूर्ति है, पूजा करो। वह बेचारा पूजा करने लगता है। दो दिन में, दो वर्ष का बच्चा, उसके दिमाग में आपने जहर डालना शुरू कर दिया। उसकी बुद्धि उस सीमा तक पहुंच ही नहीं पाएगी जहां से बुद्धि अतीत, जहां से उस जगह की शुरुआत होती जो बुद्धि के ऊपर है, उसकी शुरुआत ही नहीं हो पाएगी। दो डिग्री पर रुक गए हैं आदमी सभी के सब। और उनसे अगर कहो कि छोड़ो यह विश्वास, तो वे कहते हैं, फिर हम बुद्धि के अतीत में नहीं जा सकेंगे। यह विश्वास उनको बुद्धि के अतीत जाने से रोके हुए है।

सौ डिग्री तक जाना होगा। अन्वेषण करना होगा, खोज करनी होगी, बुद्धि की क्लाइमेक्स तक पहुंचना होगा, एवोपरेटिंग पॉइंट तक पहुंचना होगा, जहां बुद्धि भाप बनती है और विलीन हो जाती है। उस समय तक थोड़ी पीड़ा झेलनी पड़ेगी--चिंतन की, विवेक की, विचार की, तर्क की, उस क्षण तक थोड़ी चिंतना करनी पड़ेगी। थोड़ी इंक्वायरी करनी पड़ेगी। और जब इंक्वायरी उस जगह पहुंच जाएगी, बुद्धि कह देगी कि बस, अगर इसके आगे जाना है तो मैं हार गई, अब मेरे जाने का काम न रहा। अगर आप वापस लौट आए, तो बात दूसरी है। अगर आपने कहा कि मुझे तो आगे जाना है, चाहे बुद्धि साथ दे, चाहे साथ न दे, मैं तो आगे जाने को हूं, तो आपकी दुनिया में एक नई दुनिया शुरू होगी, एक नया युग शुरू होगा, एक नई सीमा शुरू होगी, जहां से बुद्धि और विचार समाप्त हो जाता है और निर्विचार और समाधि का जन्म होता है।
तो जिन्हें जाना है समाधि तक, उन्हें विश्वास-अविश्वास, श्रद्धा- अश्रद्धा, आस्तिकता-नास्तिकता, इनके ऊपर उठ जाना आवश्यक है। इसलिए मैंने जोर दिया है, मेरा कोई मतलब यह नहीं है कि आप केवल तर्क-वितर्क करते हुए बैठे रहें, मेरा जोर यह है कि तर्क-वितर्क कर लेना जरूरी है ताकि आपको पता चल जाए कि बुद्धि कहां तक तर्क-वितर्क कर सकती है और फिर कहां जाकर पार हो जाए। जिस दिन आप असहाय पाएंगे अपने को, उसी दिन कोई बड़ी विराट शक्ति आपका सहारा बन जाएगी और आपके हाथ में हाथ आ जाएगा और आप आगे बढ़ जाएंगे।
एक छोटी सी घटना से आपको समझाऊं।
कृष्ण एक दिन भोजन करने बैठ गए और रुक्मिणी पंखा झलती हैं, और वे भोजन
कर रहे हैं। फिर बीच में थाली छोड़ कर भागने लगे हैं, तो रुक्मिणी ने कहाः आाप कहां जाते हैं? क्या हो गया है? कृष्ण ने कहा कि अभी मत रोको, मैं लौट कर बताऊंगा। बहुत जरूरी में हूं, बहुत जल्दी में हूं। कोई बहुत इमरजेंसी खड़ी हो गई होगी। कोई बहुत तात्कालिक घटना खड़ी हो गई, वे भागे हैं। वे फिर द्वार तक गए और वापस लौट आए। रुक्मिणी तो हैरान हो गई कि आधी थाली छोड़ कर जिस बात के लिए भागे थे, द्वार से ही वापस लौट आए? वे आकर चुपचाप बैठ कर भोजन करने लगे। रुक्मिणी ने कहाः मैं कुछ समझी नहीं। भागना भी पहेली थी और लौट आना भी और बड़ी पहेली है। क्या कारण था, आप भागे क्यों? और फिर लौट कैसे आए?
कृष्ण ने कहाः वह बात खत्म हो गई। मेरा एक प्यारा एक गांव की सड़क पर भीख मांग रहा है। उसे बच्चे पत्थर मार रहे हैं। गांव के लोग उसे सता रहे हैं। वह खड़ा हुआ हंस रहा था और गीत गाए जा रहा था। उसके मन में जरा भी क्रोध न था, उसके मन में जरा भी प्रतिरोध न था। वह पत्थर खा रहा था, उसके माथे से खून टपक रहा था। गांव के लोग पत्थर मार रहे थे, उसे पागल समझ रहे थे, उसे सता रहे थे और वह गीत गा रहा था। मेरी जरूरत आ गई थी कि मैं जाऊं। मैं भागा। लेकिन जब तक मैं द्वार पर पहुंचा उसने भी अपने हाथ में पत्थर उठा लिया था। इसलिए मैं वापस आ गया। फिर मेरी कोई जरूरत न रही। अब उसने खुद ही अपना पत्थर उठा लिया। अब वह जवाब दे रहा है। अब मेरा वहां कोई काम न रहा। वह बिल्कुल बेसहारा था, मेरी जरूरत थी। अब उसने खुद अपना सहारा खोज लिया, अब मेरी कोई जरूरत नहीं, मैं वापस लौट आया।
इस कहानी को ऐसा मत समझ लेना कि घर में आप कृष्ण भगवान की मूर्ति रख कर बैठ जाएं और कहें कि आओ सहारा दो, बच्चा बीमार है। यह मैं नहीं कह रहा हूं। कि बच्चे को चेचक निकली है, तो चलो इलाज करो भगवान आकर। कोई मुकदमा न हार जाएं, तो कुछ सहायता करो। यह मैं नहीं कह रहा हूं। ये कहानियां इतिहास नहीं हैं। ये कहानियां परिदृश्य हैं। ये कहानियां सब प्रमोट हैं। यह कहानी यह कहती है कि परमात्मा की शक्ति उसको उपलब्ध होती है जो अपनी शक्ति का सब सहारा छोड़ देता है। जो अपना तर्क छोड़ देता है, अपना वितर्क छोड़ देता है, अपना विश्वास छोड़ देता है और अपना अविश्वास छोड़ देता है। जो मौन और शून्य में खड़ा रह जाता है। जो अपनी सारी पकड़ छोड़ देता है, सारी क्लिंगिंग छोड़ देता है। अपनी मुट्ठी खोल देता है और कह देता है कि मैं कुछ भी नहीं पकड़ता, क्योंकि मैं क्या जानता हूं जो पकडूं? क्या सत्य है मुझे पता नहीं? क्या परमात्मा है मुझे पता नहीं? क्या मार्ग है मुझे पता नहीं? मुझे कुछ भी पता नहीं, मैं निपट अज्ञानी हूं, मैं बेसहारा हूं, मैं सब छोड़ कर खड़ा हो

गया हूं। ऐसी टोटल हेल्पलेसनेस जब पैदा होती है, ऐसी पूर्ण बेसहारा स्थिति जब पैदा होती है, तब, तब उस परम शक्ति का सहारा मिलना शुरू हो जाता है। बुद्धि जब बेसहारा होती है, तो समाधि की झलकियां आनी शुरू हो जाती हैं।
लेकिन विश्वासी की बुद्धि और अविश्वासी की बुद्धि कभी भी बेसहारा नहीं होती। उसके हाथ में गीता है, कुरान है, कृष्ण हैं, बुद्ध हैं, महावीर हैं, सब हैं, और वह सबका सहारा लिए खड़ी है। जो आदमी किसी का सहारा लिए खड़ा है, वह परमात्मा को वंचित कर रहा है कि वह उसे सहारा दे दे। जो आदमी किसी के पीछे चल रहा है, वह परमात्मा को मौका नहीं दे रहा है कि उसका साथी हो जाए। जो आदमी अपने विश्वास किए बैठा है, वह मौका नहीं दे रहा है उसकी चेतना को कि चेतना बुद्धि का अतिक्रमण कर जाए। फिर वह रोता रहे, चिल्लाता रहे, भजन करे, कीर्तन करे, मंदिरों में जाए, मस्जिदों में जाए, चरणों में झुके गुरुओं के, कहीं भी कुछ नहीं होगा, जीवन उसका पूरा व्यर्थ जाएगा। जब तक वह यह न जान ले कि मैं अपने ही सहारे खोज रहा हूं, तब तक कोई सहारा नहीं मिल सकता। एक बेसहारा होने का भी अपना सहारा है। न कुछ हो जाने का भी अपना, अपना सब कुछ हो जाने का मार्ग है। सब छोड़ देने का भी एक अदभुत भूमि को उपलब्ध कर लेने का द्वार है, जहां सब उपलब्ध हो जाता है।
तो मैं जो जोर दे रहा हूं, वे सब तरह के बुद्धि के सहारे छिन जाएं, वह इसलिए ताकि बुद्धि का अतिक्रमण हो सके। बुद्धि के अतिक्रमण के बिना सत्य का कोई अनुभव नहीं।
इस संबंध में और आने वाली दो दिन की चर्चाओं में बात स्पष्ट हो सकेगी।
कुछ प्रश्न रह गए, उन पर मैं कल आपसे बात करूंगा।

मेरी बातों को इतनी शांति और इतने प्रेम से सुना, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं।
मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

अमृत द्वार
तीसरा प्रवचन

ज्ञान नहीं, विस्मय

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक सुबह रामकृष्ण के पास एक धनिक आया, उसने उनके चरणों में आकर एक हजार स्वर्ण-मुद्राएं रखीं और कहा कि इन्हें स्वीकार कर लें। रामकृष्ण कहने लगे उस धनिक से, तेरा मोह होगा इस धन के प्रति, तेरी आसक्ति होगी, क्यों तू व्यर्थ इन्हें खोता है? पर उस व्यक्ति ने कहा कि मुझे कोई मोह नहीं, मुझे कोई आसक्ति नहीं। मुझे आनंद होगा आप इन्हें स्वीकार कर लेंगे तो। रामकृष्ण ने कहाः तुझे कोई मोह नहीं, आसक्ति नहीं, तो जा इन सारी मुद्राओं को नीचे गंगा पर फेंक आ। गंगा पर डाल आ।
अब रामकृष्ण को भेंट की गई मुद्राएं थीं वे, और खुद रामकृष्ण ने कहा
कि जाकर गंगा में फेंक आ, तो वह आदमी पोटली बांध कर उन स्वर्ण-मुद्राओं को गंगा के घाट पर ले गया। फिर कोई एक घंटे बाद वह वापस लौटा। रामकृष्ण बार-बार पूछने लगे कि गंगा में स्वर्ण-मुद्राएं फेंकने में इतनी देर क्यों लग गई? फिर उन्होंने दो व्यक्ति भेजे, उन्होंने लौट कर बताया कि वह आदमी एक-एक मुद्रा गिन कर गंगा में फेंक रहा है। फिर वह आदमी लौटा। रामकृष्ण उससे कहने लगे कि जो काम एक ही बार में हो सकता था, तूने व्यर्थ ही हजार बार में किया? जो काम एक ही कदम में हो सकता था, तूने व्यर्थ ही हजार कदम उठाए? जिस चीज को फेंकना था, उसे गिनने की क्या जरूरत थी? जिसे सम्हाल कर रखना होता है उसे गिनना पड़ता है। और जिसे फेंकना होता है उसे गिनना नहीं पड़ता है। तूने व्यर्थ ही घंटा भर खराब किया। तू किसलिए गिनती करता था?
मनुष्य को तो उसकी सारी अंध-श्रद्धाएं, सारी परंपराएं, सारे विश्वास
एक साथ ही गंगा में फेंक देने हैं। उनकी गिनती नहीं करनी है। गिन-गिन कर फेंकिएगा तो आपका जीवन समाप्त हो जाएगा और आप उन्हें नहीं फेंक पाएंगे। क्योंकि वह आदमी तो, हजार मुद्राएं थीं, गिन कर फेंक भी आया था, घंटे भर में वह काम भी पूरा हो गया था। लेकिन आदमी अगर गिन-गिन कर विश्वास फेंकेगा, गिन-गिन कर अंधापन फेंकेगा, तो जीवन बहुत छोटा है और अंधेपन का जाल बहुत बड़ा। जीवन चुक जाएगा और अंधेपन से मुक्ति नहीं हो सकेगी। इसलिए इकट्ठा ही यह बात समझ लेनी है कि अगर विश्वास गलत है, लंगड़ा-लूला करता है, मनुष्य को परतंत्र करता है। अगर यह दृष्टि और विवेक स्मरण में आता है, तो फिर इस विचार में मत बैठे रहिए कि धीरे-धीरे हम विश्वासों को छोड़ेंगे, धीरे-धीरे हम जाल को तोड़ेंगे, धीरे-धीरे हम बाहर निकलेंगे।...
बुद्ध कहते थे, एक आदमी आग में गिर पड़ा था। उससे लोगों ने कहा कि बाहर निकल आओ। तो वह आदमी छलांग लगा कर बाहर निकल आया। उसने यह नहीं कहा कि मैं धीरे-धीरे निकलूंगा। आग में गिर पड़ा आदमी धीरे-धीरे बाहर नहीं निकलता, और न यह कहता है कि मैं कल निकलूंगा, परसों निकलूंगा। आग में गिर पड़ा आदमी छलांग लगा कर बाहर निकल आता है।
लेकिन विश्वास की आग आग से भी ज्यादा बदतर और जलाने वाली है। आग तो शरीर को जलाती है, विश्वास पूरी आत्मा को जला डालता है। और उसमें पड़े हुए लोग कहते हैं, हम धीरे-धीरे, आहिस्ता-आहिस्ता कोशिश करेंगे और बाहर निकलेंगे।
जब कोई यह कहता है कि मैं आग से धीरे-धीरे बाहर निकलूंगा, तो दो बातें साफ हैं, या तो उसे आग दिखाई नहीं पड़ रही है और या फिर वह आत्महत्या करने को उतारू है, वह निकलना ही नहीं चाहता। विश्वास के बाहर निकलते समय जो आदमी कहता है, मैं धीरे-धीरे बाहर निकलूंगा, या तो उसे विश्वास की आग दिखाई नहीं पड़ रही है कि वह जलाती है प्राणों को और या फिर वह आत्महंता है, आत्मघात करने का निश्चय कर बैठा है, वह बाहर निकलना नहीं चाहता है।
कल सुबह मैंने विश्वास नहीं, विचार; अंधापन नहीं, आंखें; स्वीकृति नहीं, संदेह, इस पर पहले सूत्र पर आपसे बात की। जीवन-क्रांति का पहला सूत्र हैः विश्वास नहीं, विचार। विश्वास से जो चलता है उसके जीवन में कोई क्रांति संभव नहीं है। विचार से जो चलता है उसे जीवन में क्रांति

अनिवार्य है। विचार बुनियादी रूप से विद्रोही है, वह रिबेलियस है। विचार बुनियादी रूप से आंखें देता है और बतलाता है कहां भूल है, कहां गलती है। और जब भूल दिखाई पड़ती है और गलती दिखाई पड़ती है, तो उससे मुक्त हो जाना कठिन नहीं होता है।
पहला सूत्र हैः विश्वास नहीं, विचार। इस पर कल हमने बात की। आज दूसरे सूत्र पर हम बात करेंगे कि जीवन-क्रांति का दूसरा सूत्र क्या है, दूसरा सूत्र हैः ज्ञान नहीं, विस्मय।
विश्वास को पकड़ कर चलते रहेंगे, तो आप ज्ञानी होते चले जाएंगे। और जिसको हम ज्ञानी कहते हैं, जिसको हम पंडित कहते हैं, जिसको हम लर्निंग कहते हैं, वह आदमी कभी भी धार्मिक नहीं हो पाता है।
ज्ञान का जिसे अहंकार पैदा हो जाता है, उसके जीवन में धर्म की कोई शुरुआत नहीं होती। और ज्ञान का जिसको भ्रम हो जाता है, उसके जीवन में आनंद का कभी कोई संबंध नहीं होता। ज्ञान की भूल में जो पड़ जाता है, वह अज्ञानी से भी ज्यादा अंधेरे मार्गों पर भटक जाता है। और ज्ञान की भूल सारी मनुष्य-जाति को हो गई है। इसलिए जितना ज्ञान बढ़ता गया है, तथाकथित ज्ञान, उतना ही आदमी अधार्मिक, उतना ही आदमी अंधकारपूर्ण, उतना ही आदमी अहंकारी, उतना ही आदमी जटिल और कठिन होता चला गया है। ज्ञान ने मनुष्य की आंखें बंद कर दी हैं। और ज्ञान सरासर झूठ है और असत्य है। हमें कुछ भी पता नहीं। सत्य यह है कि हमें कुछ भी पता नहीं है जीवन के संबंध में। राह के किनारे पड़े पत्थर को भी हम नहीं जानते, लेकिन आकाश में बैठे परमात्मा के संबंध में हम प्रवचन दे सकते हैं।
अज्ञात है सब कुछ। जीवन एक रहस्य है। और रहस्य से जो संबंधित होना चाहता हो उसे विस्मय की आंखें चाहिए उसके पास। रहस्य को केवल वही जान पाता है जो विस्मय-विमुग्ध हो जाता है, जो रहस्य से आपूरित हो जाता है, जो अपने अज्ञान को अनुभव करता है और चुप और मौन खड़ा रह जाता है।
ज्ञानी चुप और मौन खड़ा नहीं रह पाता। वह जानता है, उसे सब कुछ पता है, उसे सब कुछ ज्ञात है। जिसको भी यह भ्रम पैदा हो जाता है कि मुझे सब कुछ ज्ञात है, बस उसके द्वार बंद हो गए और उसकी यात्रा समाप्त हो गई।
तीन हजार वर्षों में मनुष्य ने अगर कोई सबसे खतरनाक ईजाद की है, तो वह
इस बात की ईजाद की है कि उसने यह भ्रम पैदा कर लिया है कि हम जानते हैं। क्या जानते हैं हम? स्वयं को भी नहीं जानते, और तो जानना बहुत दूर है। लेकिन हमारे पास प्रत्येक बात के लिए रेडीमेड उत्तर तैयार हैं। तैयार उत्तर हैं हमारे पास। हमारी किताबों में, हमारे शास्त्रों में, हमारे गुरुओं में, हमारे पास तैयार उत्तर हैं। हर प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमारे पास तैयारी है। और तब प्रश्न हमें ले जा सकते थे अज्ञात में, वे फिर नहीं ले जा पाते, क्योंकि हमारे उत्तर हमें अटका देते हैं और बात समाप्त हो जाती है।
डी. एच. लारेंस एक बगीचे में सुबह-सुबह घूमने निकला था। उसके साथ एक छोटा सा बच्चा था। जैसे कि बच्चों की आदत होती है, वे जीवन के बड़े से बड़े प्रश्न खड़े कर देते हैं। वह बच्चे ने हाथ उठा कर पूछने लगा लारेंस को कि वृक्षों के पत्ते हरे क्यों हैं? वाई दि ट्रीज आर ग्रीन?
लारेंस हंसने लगा और उसने कहाः दि ट्रीज आर ग्रीन, बिकाज दे आर ग्रीन!
वह कहने लगा कि वृक्ष हरे हैं, क्योंकि वे हरे हैं।
उस लड़के ने कहाः आप बड़े अजीब आदमी मालूम होते हैं! मेरे पिता को मैं कुछ भी पूछूं, वे ठीक उत्तर देते हैं। आप क्या उत्तर देते हैं! उसका पिता उसे क्या उत्तर देता था?
अगर वह पुराने ढंग का आदमी होता, तो वह कहता कि वृक्ष इसलिए हरे हैं कि भगवान ने उनको हरा बनाया, ताकि भक्तों की आंखों को अच्छे लगें। या अगर कुछ वैज्ञानिक बुद्धि का होता, तो वह कहता कि वृक्ष इसलिए हरे हैं कि उनमें क्लोरोफिल है, उनकी रासायनिक व्यवस्था उनको हरा बनाती है। लेकिन लारेंस ने बड़ा धार्मिक उत्तर दिया, उसने कहाः दे आर ग्रीन, बिकाज दे आर ग्रीन। वे हरे हैं, क्योंकि वे हरे हैं। लारेंस ने यह कहा कि हमको पता नहीं कि वे

क्यों हरे हैं? हम नहीं जानते कि वे क्यों हरे हैं? वे बस हरे हैं। हरे दिखाई पड़ते हैं। और हमारे पास कोई भी उत्तर नहीं है कि वे क्यों हरे हैं? क्या आपको समझ में आता है? इस उत्तर में बड़ी अदभुत बात है। इस उत्तर में प्रश्न की हत्या नहीं की गई, प्रश्न फिर मौजूद खड़ा रह गया है। इसमें कोई बंधा हुआ उत्तर नहीं दिया गया। इसमें उत्तर देने वाले ने यह ख्याल नहीं लिया कि मैं जानता हूं।
धार्मिक आदमी का पहला लक्षण है कि वह जानता है कि मैं नहीं जानता हूं।
न जानने का बोध धार्मिक आदमी का लक्षण है। पंडित का बोध उलटा है, वह जानता है कि मैं जानता हूं। इसलिए पंडित कभी भी धार्मिक नहीं हो पाता है।
वे लोग जो शराबखानों में शराब पीते हैं, वे लोग जो वेश्या घरों में नृत्य देखते हैं, कभी धार्मिक हो सकते हैं; लेकिन वे लोग जो शास्त्रों का बोझ लेकर चलते हैं, वे कभी भी धार्मिक नहीं हो सकते। शराब पीने वाला कभी धर्म की ओर आ सकता है। और वेश्यालयों में निवास करने वाला कभी धर्म की ओर आ सकता है। लेकिन शब्दों में और ज्ञान में निवास करने वाला, शब्दों और ज्ञान की शराब को पी लेने वाला कभी धर्म के पास नहीं आ पाता है। एक दीवाल खड़ी हो जाती है इस बात की कि मैं जानता हूं। और जिस आदमी को यह ख्याल पैदा हो जाता है कि मैं जानता हूं, वह यह भूल ही जाता है कि आदमी की सामर्थ्य कितनी है? और सत्य कितना बड़ा है, सत्य कितना अनंत है और कितना अनादि है। सत्य कितना असीम है और मैं कितना सीमित और कितना छोटा हूं?
यह वैसे ही है जैसे कोई चला जाए समुद्र के किनारे और अपनी गगरी में पूरे सागर को भर लेना चाहे। और अगर कोई आदमी आ जाए अपनी गगरी में सागर को भर कर और कहने लगे सागर को मैंने अपनी गगरी में भर लिया, तो हम उस पर हंसेंगे और कहेंगे, तुम पागल हो, सागर को कोई कैसे गागर में भर सकता है? गागर तो तोड़ी जा सकती है सागर में जाकर, लेकिन सागर गागर में भर नहीं लाया जा सकता है।
लेकिन ज्ञानी को, तथाकथित पंडित को लगता है कि वह परमात्मा को जान कर
आ गया है। उसने जान लिया है सब। जाना उसने कुछ भी नहीं है सिवाय शब्दों के, सिवाय सिद्धांतों के, सिवाय शास्त्रों के। वह सभी शास्त्रों, सभी सिद्धांतों का एक संग्रह हो गया है। और सभी तरह के संग्रह मनुष्य के अहंकार को प्रगाढ़ करते हैं, मजबूत करते हैं। संग्रह चाहे धन का हो!
एक आदमी रुपये इकट्ठे करता चला जाता है; रुपयों की संख्या बढ़ती चली जाती है, और वह आदमी बड़ा होने लगता है कि मेरे पास इतना है, मेरे पास इतना है, मेरे पास इतना है। उसके पास जितना होता चला जाता है उतना वह आदमी और उसका अहंकार मजबूत होता चला जाता है कि मैं कुछ हूं। एक आदमी धन इकट्ठा करता है, दूसरा आदमी ज्ञान इकट्ठा करता है, इन दोनों में कोई फर्क नहीं है। धन के सिक्के बताते हैं कि मैं कुछ हूं, फिर ज्ञान के सिक्के और शब्द बताने लगते हैं कि मैं कुछ हूं। और धनी एक लिहाज से ज्ञानी के मुकाबले कमजोर है। उसकी चोरी हो सकती है, उसके घर में आग लग सकती है, उसका दिवाला निकल सकता है। लेकिन ज्ञानी की न चोरी हो सकती, न आग लग सकती, न दिवाला निकल सकता है। तो ज्ञान की संपदा ज्यादा सुरक्षित है। तो हमारे इस पृथ्वी पर जो लोग थोड़े लोभी हैं वे धन इकट्ठा करते हैं, जो ज्यादा लोभी हैं वे ज्ञान इकट्ठा करते हैं। जिनकी ग्रीड, जिनका लोभ साधारण सिक्कों से तृप्त नहीं होता, वे सिद्धांतों के और शब्दों के सिक्के इकट्ठे करते हैं। और उपनिषद, और वेद, और गीता, और कुरान इकट्ठी करते हैं। और उन सबको संगृहीत करके वे समझते हैं, हमने कोई संपदा इकट्ठी कर ली, हम कुछ हो गए हैं। लेकिन परमात्मा के समक्ष किसी भी भांति की संपदा लेकर कोई भी प्रवेश नहीं पा सकता है।
जीसस क्राइस्ट कहते थेः सुई के छेद से ऊंट निकल जाए, लेकिन परमात्मा
के स्वर्ग में धनी आदमी प्रवेश नहीं पा सकेगा। लेकिन शायद लोग सोचते होंगे कि धनी आदमी से मतलब वह है जिसके पास रुपये हैं। रुपये का ही सवाल नहीं है, जिसके पास किसी भी तरह का संग्रह है, वह धनी आदमी है। जिसके पास कोई संग्रह नहीं है, वही आदमी निर्धन है, वही आदमी ऐसा है जिसके पास कोई संपदा नहीं है। आखिर संपदा और संग्रह से क्राइस्ट को इतना विरोध क्या है? विरोध यह है कि जहां संग्रह है, वहां अहंकार है, वहां ईगो है। जहां संग्रह

है वहां यह ख्याल है कि मैं कुछ हूं, और जहां यह ख्याल है कि मैं कुछ हूं, वहां परमात्मा से मिलना असंभव हो गया है। क्योंकि उस द्वार पर तो वे ही प्रवेश पाते हैं जो जान लेते हैं कि हम कुछ भी नहीं हैं। जो शून्य होकर वहां जाते हैं, वे प्रवेश पा जाते हैं। जो कुछ होकर वहां जाते हैं, वे प्रवेश नहीं पाते हैं। प्रेम का द्वार उन्हीं के लिए खुलता है, जिनका अहंकार नहीं है। प्रार्थना का द्वार भी उनके लिए ही खुलता है, परमात्मा का द्वार भी उन्हीं के लिए खुलता है।
एक फकीर था, अगस्तीन। वह तीस वर्षों से ज्ञान इकट्ठा कर रहा था। जितने शास्त्र उपलब्ध थे, उसने पढ़ डाले थे। उसने कंठस्थ कर लिए थे। वह सब जान लिया था जो जाना जा सकता था। लेकिन परमात्मा की कोई खबर न मिली थी। फिर वह घबड़ाया। फिर वह चिंतित और दुखी हो गया। फिर वह तपश्चर्या में लग गया। फिर उसने उपवास किए, फिर वह भूखा रहा और धूप-ताप सहे। शरीर को उसने सुखा डाला, लेकिन फिर भी कोई परमात्मा की सुगंध न मिली। तब एक सुबह वह निराश और उदास होकर आत्महत्या करने समुद्र के किनारे चला गया। सुबह थी और अभी सूरज निकलने को था। निर्जन तट था सागर का, वहां कोई भी न था। तब अगस्तीन वहां पहुंचा और उसने जाकर आकाश की तरफ हाथ जोड़े और कहाः हे परमात्मा! यह अंतिम मेरा निवेदन है, या तो तू मुझे मिल और या फिर मैं डूब कर आत्महत्या किए देता हूं। यह अंतिम दांव है मेरा।
अहंकारी हमेशा ही दांव लगाते हैं। अहंकार से बड़ा कोई जुआ नहीं है। अहंकार ही सबसे बड़ा दांव है। कोई आदमी अपनी जिंदगी लगा देता है धन कमाने को, कोई आदमी अपनी जिंदगी लगा देता है परमात्मा को पाने को, लेकिन दोनों दांव अहंकार के हैं। एक को हम संसारी कहते हैं, दूसरे को हम संन्यासी कहते हैं। लेकिन दांव अहंकार का है कि मैं पाकर रहूंगा। उसने उस सुबह जाकर कहा कि या तो मुझे मिलो या फिर मैं डूब कर अपनी हत्या कर लेता हूं। यह मेरी आखिरी प्रार्थना है। वह यह कह ही रहा था कि सुबह सूरज निकलने लगा, उसने चारों तरफ देखा कि कोई देख तो नहीं रहा? निर्जन तट था, लेकिन एक पत्थर के पास एक छोटा सा बच्चा बैठा रो रहा था। अगस्तीन बहुत हैरान हुआ! इतनी सुबह इस छोटे से बच्चे को यहां आने की क्या जरूरत पड़ गई? अकेला है, कोई साथ नहीं, किसलिए रोता होगा? वह उस बच्चे के पास पहुंचा और उसने पूछा कि मेरे बेटे, तुम किसलिए रो रहे हो? और क्या चाहते हो? इतनी सुबह तुम कैसे आ गए? और तुम्हारे मां-बाप कहां हैं? वह बच्चा रोता ही रहा और उसकी आंख से आंसू टपकते ही रहे। और उसने कहाः मत पूछिए मेरी तकलीफ को! अगस्तीन ने उसके आंसू पोंछे और कहाः मुझे बताओ, शायद मैं तुम्हारा कुछ साथ दे सकूं। उस बच्चे ने अपने हाथ में एक प्याली ले रखी थी। और अगस्तीन को कहा कि यह प्याली है, मैं इसमें समुद्र को भरना चाहता हूं, लेकिन समुद्र इसमें भरता नहीं है। तो मैं घबड़ा गया हूं। मैंने बहुत कोशिश कर ली। और आज मैं तय करके आया हूं कि या तो समुद्र को भर कर घर लौटूंगा या फिर नहीं लौटूंगा।
अगस्तीन के सामने जैसे बिजली कौंध गई! जैसे अंधेरे घर में कोई दिया जल गया! वह खड़ा हो गया अवाक! फिर वह नाचने लगा! वह बच्चा पूछने लगा, आप नाचते क्यों हैं? क्या हो गया आपको? अगस्तीन ने कहा कि मेरे बेटे, मैंने समझा कि तू ही बालक है, अब मुझे पता चला, मैं भी एक बच्चा हूं। तेरी बात मुझे मूढ़तापूर्ण मालूम पड़ती है कि तू प्याली में सागर को भरने चला आया, लेकिन यह तो कभी हो भी सकता है कि सागर प्याली में भर जाए, क्योंकि प्याली भी सीमित है और सागर भी सीमित है। लेकिन मैं तो अपनी सीमित खोपड़ी में उसको भरने चला हूं जो असीम है! वह कैसे भर सकेगा? मेरे तीस साल व्यर्थ गए। और मुझे पता भी न था कि एक बच्चे से यह संदेश मिलेगा कि मेरा सारा जीवन व्यर्थ गया! मैं भी इसी तरह के पागलपन में पड़ा था।
लेकिन उसी क्षण जैसे उसकी जिंदगी और से और हो गई। वह नाचता हुआ वापस लौट गया। उसके आश्रम के लोगों ने उसे नाचते हुए देखा, तो सोचा कि शायद इसने पा लिया परमात्मा का ज्ञान। शायद वह सत्य को जान कर लौट रहा है। क्योंकि उसकी आंखों में कभी खुशी नहीं देखी गई थी, उसके होंठों पर कभी मुस्कुराहट नहीं देखी गई थी। उसके पैरों में... उसके पैर भी नाच सकते हैं इसकी किसी को कल्पना न थी। लोगों ने भीड़ लगा ली और उन्होंने कहाः अगस्तीन, क्या तुमने

उसे पा लिया जिसे तुम पाना चाहते थे? क्या तुमने वह जान लिया जिसको जानने के लिए तुम दीवाने थे? क्या मिल गई वह बात? क्या पा लिया वह ज्ञान? अंगस्टीन ने कहा कि नहीं, जो पाने चला था वही खो गया। जो खोजने निकला था वही मिट गया। और मैं तुमसे कहता हूं कि जिस क्षण मैंने पाने का ख्याल छोड़ दिया, और जिस क्षण मैंने जानने का ख्याल छोड़ दिया, उसी दिन मैंने पाया कि उसे तो हमेशा पाया हुआ है। वह तो हमेशा जाना ही हुआ है। लेकिन जानने की कोशिश हमारी इतनी तीव्र थी कि हम इस कोशिश में ही उलझ गए, और जो निरंतर साथ, पास मौजूद था, सब तरफ मौजूद था, वह दिखाई नहीं पड़ता था।
मनुष्य ईश्वर को नहीं जान सकता, लेकिन ईश्वर में मिट सकता है। और उस मिट जाने से जो उपलब्ध होता है, वह ज्ञान है। लेकिन वह ज्ञान पंडित का ज्ञान नहीं। उस मिट जाने से जो जाना जाता है, वह अनुभव है। लेकिन वह अनुभव शब्दों से सीखा हुआ अनुभव नहीं है। बूंद खो जाती है सागर में और सागर हो जाती है। जान लेती है सागर को। लेकिन बूंद अगर चाहती हो कि सागर मुझ में आ जाए, बूंद अगर चाहती हो कि सागर को मैं अपने में भर लूं, तो असंभव है। लेकिन बूंद सागर में गिर सकती है और सागर हो सकती है। और जब बूंद सागर में गिर कर सागर हो जाती है, तो पता लगाना कठिन है कि बूंद सागर में मिल गई कि सागर बूंद में मिल गया। वे दोनों एक ही हो जाते हैं।
मनुष्य जान नहीं सकता, लेकिन हो सकता है। मनुष्य पा नहीं सकता, लेकिन
हो सकता है। मनुष्य परमात्मा हो सकता है। और वह जो होना है, वह जो हो जाना है, वही जानना है, लेकिन वह जानना शास्त्रों से नहीं मिलता, शब्दों से नहीं मिलता, सिद्धांतों से नहीं मिलता। सिद्धांत और शास्त्र तो एक झूठा ज्ञान देते हैं आदमी को। एक सब्स्टीट्यूट नालेज देते हैं। एक झूठा ज्ञान देते हैं, जिससे भ्रम पैदा होता है कि हमने जान लिया, और हम बिना जाने रह जाते हैं। वह अज्ञान बेहतर जो जानता है कि नहीं जानते उस ज्ञान से जिसको यह ख्याल होता है कि हम जानते हैं। अज्ञान तो कभी न कभी ले जाएगा प्रभु के किनारे पर, लेकिन ज्ञान रोक लेगा। क्योंकि फिर जानने को कुछ शेष नहीं रह जाता है, इसलिए जाने को भी कुछ शेष नहीं रह जाता।
दूसरी बात स्मरण रख लेनी जैसी है कि कहीं हम ज्ञानी तो नहीं हो गए हैं? अन्यथा हमारे जीवन में क्रांति नहीं हो सकेगी। और ज्ञानी होने का मजा ऐसा है, जिसका कोई हिसाब नहीं है। चार शब्द कोई सीख ले और ज्ञानी हो जाता है। चार शास्त्र कोई पढ़ ले और ज्ञानी हो जाता है। स्मृति को ही ज्ञान समझ लेता है। जो बात याद हो जाती है सोच लेता है यह मैंने जान लिया है।
स्मृति ज्ञान नहीं है, ज्ञान बात ही और है। स्मृति से जो आता है वे केवल शब्द हैं और स्मृति जब शून्य हो जाती है तब जो उतरता है वह ज्ञान है। स्मृति तो आदमी को एक हौज बना देती है, ज्ञान आदमी को बनाता है एक कुआं। कुएं और हौज का फर्क तो आपको ख्याल में है ही। हम सभी जानते हैं कि क्या फर्क है उनमें? देखने में ऊपर से एक जैसे मालूम पड़ते हैं; हौज भी कुआं मालूम पड़ती है, कुआं भी हौज मालूम पड़ता है। लेकिन उनमें बुनियादी फर्क है, उनमें आत्मिक फर्क हैं। हौज का सारा पानी उधार है। अपना उसके पास कुछ भी नहीं। कुएं के पास सब कुछ अपना है, उधार कुछ भी नहीं। कुएं के पास अपनी आत्मा है, हौज के पास अपनी कोई आत्मा नहीं।
एक आदमी कुआं खोदता है, तो उसे जमीन खोद कर अलग करनी पड़ती है, मिट्टी- पत्थर निकाल डालने पड़ते हैं, सिर्फ पानी अपने आप प्रकट होता है, पानी कहीं से लाना नहीं पड़ता, पानी मौजूद है। हम जहां बैठे हैं, उस जमीन के नीचे भी पानी मौजूद है, पानी नहीं लाना है कहीं से, सिर्फ बीच की परतों को अलग कर देना है, बीच की बाधाओं को दूर कर देना है, सिर्फ बीच के पर्दे अलग कर देना है, तो नीचे पानी मौजूद है। पानी नहीं लाना है, पर्दे दूर करना है, बाधाएं हटा देनी हैं। निगेटिव काम है, नकारात्मक काम है। पाजिटिव कोई काम नहीं है। पानी को लाना नहीं है कहीं से, सिर्फ बीच में बाधाएं हैं, पानी मौजूद है। बीच की दीवाल को तोड़ देना है और पानी मिल जाएगा। कुछ तोड़ना है, कुछ लाना नहीं है। कुछ हटाना है, कुछ लाना नहीं है। लेकिन हौज बनाता है एक आदमी, तो उसे पाजिटिव काम करना पड़ता है। उसे विधायक काम करना पड़ता है। उसे पहले ईंट, गारा, मिट्टी लानी पड़ती है, ताकि दीवालें जोड़े और हौज बनाए। फिर

उसे पानी भी लाना पड़ता है, ताकि उन दीवालों में भरे और रोके। हौज लाने वाले को सब कुछ लाना पड़ता है, कुआं खोदने वाले को सब कुछ हटाना पड़ता है।
ज्ञान कुएं जैसी प्रक्रिया है, चित्त पर से कुछ चीज हटानी पड़ती है, भीतर जलस्रोत उपलब्ध हैं, वे फूट पड़ते हैं, उनके झरने प्रकट हो जाते हैं। पंडित हौज जैसी प्रक्रिया है, उसमें सब कुछ लाना पड़ता है--गीता से, कुरान से, बाइबिल से, बुद्ध से, महावीर से, सब ला-ला कर इकट्ठा करना पड़ता है, दीवाल बनानी पड़ती हैं, उसमें फिर पानी उधार भरना पड़ता है। पंडित एक हौज है। और बड़े मजे हैं, न केवल हौज और कुएं के बनने की प्रक्रिया अलग है, उनके परिणाम भी स्वभावतः अलग होंगे। कुआं हमेशा चिल्लाता रहता हैः मेरे पानी को निकालो, मेरे पानी को निकालो; क्योंकि जितना पानी निकल जाता है उतना नया पानी आ जाता है। हौज चिल्लाती रहती हैः मेरे पानी को मत निकालना; क्योंकि पानी निकला और वह खाली हो जाती है। हौज कहती है, मुझमें पानी डालो; मुझसे निकालना मत। हौज संग्रह करती है और छोड़ने से डरती है, बांटने से डरती है। कुआं बांटना चाहता है, संग्रह से डरता है। कुआं इकट्ठा नहीं करना चाहता, कुआं लुटा देना चाहता है। कुआं दोनों हाथ उलीचना चाहता है कि उलीच जाए, निकल जाए। क्योंकि जितना निकल जाता है पानी, उतने नये झरने प्रकट हो जाते हैं, उतना नया जल उसके भीतर आ जाता है। उतना वह नया हो जाता है। कुएं में पानी इकट्ठा हो, तो कुआं बूढ़ा होता है; कुएं का पानी बंटता रहे, तो वह जवान होता है। हौज का पानी निकल जाए, तो वह मर जाती है; हौज का पानी रुका रहे, तो ही उसके प्राण हैं, तो ही उसकी ख्याति है, उसकी संपदा है। फिर हौज में पानी अगर पड़ा रह जाए, तो सड़ जाएगा, क्योंकि उधार पानी के पास कोई प्राण नहीं होते, कोई जीवंतता नहीं होती। वह कोई लिविंग तो नहीं है, वह सड़ जाएगा, उसमें कीड़े पड़ जाएंगे, उसमें बदबू आने लगेगी। लेकिन कुएं का पानी अगर रुका भी रह जाए, तो सड़ेगा नहीं, उसमें बदबू नहीं आएगी, वह जीवंत है। वह लिविंग वाटर है, उसकी अपने पास जड़ें हैं, अपने झरने हैं, वह मरने वाला नहीं है।
तो पंडित सड़ता जाता है, सड़ता जाता है, उससे फिर बदबू आने लगती है। यह सारी दुनिया में आज जो आदमी की जिंदगी में इतनी दुर्गंध है, यह पंडितों के द्वारा फैली हुई बदबू का कारण है। हिंदू पंडित सड़ जाता है, मुसलमान पंडित सड़ जाता है, जैन पंडित सड़ जाता है, फिर वह बदबू फैलाता है। बदबुओं से संप्रदाय खड़े होते हैं, संघर्ष खड़े होते हैं, युद्ध खड़े होते हैं; मंदिर जलाया जाता है, मस्जिद जलाई जाती है, औरतों की इज्जत लूटी जाती है, बच्चे काटे जाते हैं, खून बहता है सड़कों पर। यह सड़े हुए पंडित से निकली हुई दुर्गंध के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। लेकिन कुआं सड़ता नहीं है, कुएं का जल तो ताजा बना रहता है। और भी फर्क हैं, हौज के भीतर जाइएगा, तो दीवाल आ जाएगी और कुएं के भीतर प्रवेश करिए, और भीतर प्रवेश करिए, और भीतर प्रवेश करिए, तो आप समुद्रों में पहुंंच जाएंगे। क्योंकि कुएं के झरने, कुएं की धारें दूर सागर से जुड़ी हैं। इसलिए तो कुआं प्राणमान है। उसे दूर से कुछ उपलब्ध होता रहता है। उसको दूर के जलस्रोत मिले हुए हैं, वह उनसे संबंधित है, उसकी कोई जड़ें हैं। लेकिन हौज की कोई जड़ें नहीं होती। हौज अपने में बंद और अपने में समाप्त होती है। हौज इसलिए अहंकार से भर जाती है कि मैं कुछ हूं। कुआं जितना अपने को जानता है, उतना ही निर-अहंकारी होता चला जाता है। क्योंकि वह पाता है मैं क्या हूं, मैं तो कुछ भी नहीं हूं। दूर सागर से पानी आता है, दूर सागर से झरने आते हैं, दूर अनंत सागरों से मेरे द्वार हैं। तो कुआं जितना अपने को जानता है उतना ही विनम्र, उतना ही ह्युमिनिटी से भरता चला जाता है। हौज जितना अपने को जानती है, उतनी अकड़ से भरती चली जाती है कि मैं कुछ हूं। क्योंकि उसका किसी से कोई संबंध नहीं, वह अपने में बंद, कुंठित और समाप्त। वह क्लोज्ड एनटायटी है। कुआं एक ओपनिंग है, दूर तक उसके द्वार खुले हुए हैं। हौज के पास कोई खिड़की, द्वार नहीं हैं, वह सब तरफ से बंद है। पंडित एक क्लोज्ड, एक बंद व्यक्तित्व है। और धार्मिक व्यक्ति, जिसको मैं ज्ञानी कहूं, वह एक ओपनिंग है, वह एक सिर्फ द्वार है। और बड़ा द्वार, और बड़ा द्वार, अंततः वह वहां पहुंच जाता है जहां परमात्मा है। जैसे कुआं सागर से जुड़ा है, वैसा धार्मिक व्यक्ति परमात्मा से जुड़ा होता है। जैसे हौज किसी से भी नहीं जुड़ी होती, सिर्फ उधार होती है, वैसे ही

पंडित भी उधार होता है और किसी से भी जुड़ा हुआ नहीं होता। धार्मिक व्यक्ति को क्या बनना है, हौज बनना है या कुआं बनना है? हम सब कुआं बनने की कोशिश में ही लगे रहते हैं, हमारे प्राणों की प्यास कुआं बनने की है। हमारी आकांक्षा, हमारी अभीप्सा कुआं बनने की है, हम सब ज्ञान पाना चाहते हैं। लेकिन... लेकिन कुआं बनना थोड़ा कठिन है। थोड़ा खोदना पड़ता है, थोड़ा अलग करना पड़ता है। अनजान रास्ता है कुएं का, जलस्रोत निकलेगा कि नहीं निकलेगा? बीच में कोई चट्टान आ जाएगी या क्या होगा? कितना खोदना पड़ेगा? पता नहीं। हौज बड़ा साफ-सुथरा रास्ता है, हौज का। घर के ऊपर बना लेते हैं, कोई डर नहीं है। और उधार पानी बहुत मिल जाता है, उसका भी कोई खतरा नहीं है। हौज बड़ी सरल है, सुविधापूर्ण है। कठिनाई नहीं है कोई, कुछ करना नहीं पड़ता। कुआं खोदने में कुछ करना पड़ता है। और कुआं खोदने में जोखिम है कि हो सकता है जलस्रोत मिले या न मिले। हो सकता है चट्टान आ जाए और आगे न बढ़ा जा सके। लेकिन इस लिहाज से हौज बड़ी सुरक्षा की बात है, कोई खतरा नहीं, कोई जोखिम नहीं।
जितने कमजोर लोग हैं, इसलिए वे हौज बना कर तृप्त हो जाते हैं। जितने आलसी लोग हैं, वे हौज बना कर तृप्त हो जाते हैं। जितने सुस्त लोग हैं, वे सब हौज बना कर तृप्त हो जाते हैं। लेकिन वे भलीभांति स्मरण रखें कि हौज उनके प्राणों की प्यास को पूरा नहीं कर सकेगी, उनके प्राणों की अभीप्सा उससे पूरी नहीं होगी। क्योंकि प्राणों की मांग तो उसके लिए है जो जीवंत हो, मृत के लिए नहीं। प्राणों की मांग तो उसके लिए है जो अनंत और अनादि से जोड़ दे। सीमित दीवालों में बंद हौज के लिए उसकी आकांक्षा नहीं है। प्राण तो असीम और अनंत होना चाहते हैं। प्राण तो सागर पाना चाहते हैं। और आप इन्हें छोटी हौजी देकर तृप्त करना चाहते हैं। इसलिए कोई तृप्ति उपलब्ध नहीं होती और जब तृप्ति उपलब्ध नहीं होती तो आदमी क्या भूल करता है? हौज को ही और बड़ी करने लगता है, और बड़ी करने लगता है। लेकिन हौज कितनी ही बड़ी हो जाए, हौज कुआं नहीं बन सकती है। और कुआं कितना ही छोटा हो, तो भी अनंत से जुड़ा हुआ है।
इसलिए अपने ज्ञान का एक छोटा सा टुकड़ा भी पराए ज्ञान के पर्वत से ज्यादा मूल्यवान है। अपने ज्ञान का छोटा सा कुआं भी परमात्मा से जोड़ देगा। और दूसरे के ज्ञान की बड़ी से बड़ी हौज, बड़े से बड़ा संग्रह भी, कभी भी किसी से जोड़ने में समर्थ नहीं है।
इसलिए दूसरे सूत्र पर मैं कहना चाहता हूं कि ज्ञान से बचें, उधार ज्ञान से, सीखे हुए ज्ञान से, शब्दों के ज्ञान से बचें, अगर उस ज्ञान को पाना है जो आपके भीतर है और जिसे उपलब्ध किया जा सकता है। वह कैसे उपलब्ध होगा? अगर हम ज्ञान से भर जाएंगे, तो भीतर का कुआं कैसे खोदेंगे? उस कुएं को खोदने की जो कुदाली है उसको मैं विस्मय कहता हूं। उसको मैं विस्मय-विमुग्ध भाव कहता हूं।
जीवन को, स्वयं को विस्मय की आंखों से देखें, जैसा एक छोटा बच्चा देखता है, जिसे कुछ भी पता नहीं। एक छोटा बच्चा आंखें खोलता है, उसे सूरज दिखाई पड़ता है; उसे कुछ भी पता नहीं है कि सूरज क्या है? न उसे यह पता है कि सूर्य नारायण भगवान हैं और अपने रथ को जोत कर सुबह-सुबह निकल आते हैं और शाम तक रथ दौड़ाते हैं। और भगवान की आज्ञा पूरी करते हैं, उसे यह पता नहीं। उसे यह भी पता नहीं कि सूर्य जो है वह हीलियम गैस का गोल पिंड है और उसमें आग जलती रहती है, और वह इतने करोड़ वर्ष से जल रहा है, और इतने करोड़ वर्ष बाद ठंडा हो जाएगा। उसे यह वैज्ञानिक बात भी पता नहीं है। वह तो आंख खोलता है और विस्मय-विमुग्ध भाव से सूरज उसके सामने खड़ा हो जाता है। वह नहीं जानता कि सूरज क्या है? लेकिन उस न जानने में भी वह देखता है, उसके प्राणों में कोई चीज छूटी है, कोई आंदोलन होता है, कोई तस्वीर बनती है, कोई भाव जन्मता है, वह विस्मय-विमुग्ध खड़ा रह जाता है, वह कुछ भी नहीं जानता। लेकिन वह न जानने में भी सूरज के समक्ष खड़ा रह जाता है। उसका एक साक्षात्कार, एक एनकाउंटर होता है। और जब ज्ञान बीच में आ जाता है, तो साक्षात्कार बंद हो जाता है। बच्चे जानते हैं और बूढ़े नहीं जानते।
क्राइस्ट एक गांव से गुजरते थे, एक भीड़ गांव के बाजार में उन्हें घेर
ली है और पूछने लगी कि तुम्हारे प्रभु को कौन जान सकेगा? उन्होंने एक छोटे

से बच्चे को भीड़ में से ऊपर उठा लिया और कहा कि जो इस बच्चे की भांति होंगे वे। बच्चे की भांति होंगे, इसका मतलब क्या है? क्या उनकी उम्र छोटी हो? बच्चों की भांति होंगे, इसका मतलब क्या है? इसका मतलब है जो विस्मय-विमुग्ध भाव से जीवन को देखने में समर्थ हैं, जो ज्ञानियों के दंभ से जीवन को नहीं देखते, अज्ञानी की सरलता से जीवन को देखते हैं, नहीं जानने की जगह से, न जानने की जगह से, स्टेट ऑफ नॉट नोइंग से जो देखते हैं, वे, वे उपलब्ध हो जाएंगे।
एक बच्चे की भांति जगत को देखें, एक बूढ़े की भांति नहीं। एक अनुभवी की भांति नहीं, एक गैर-अनुभवी की भांति। उस तरह जो नहीं जानता, तब एक फूल भी अदभुत अर्थ ले लेता है, और एक घास की पत्ती भी, पानी की एक लहर भी, हवाओं का एक झोंका भी, आकाश में चलती हुई बदलियां भी, स्त्री-पुरुषों की आंखें भी, राह के किनारे पड़ा हुआ पत्थर भी, तब एक बड़ा अर्थ, एक बड़ी मीनिंग ले लेता है। क्योंकि हमें पता नहीं तो हम झांकते हैं, हम खोजते हैं। और उस खोज में और उस झांकने में, चूंकि कोई भी उत्तर नहीं, हमारे पास सिर्फ प्रश्न है, सिर्फ जिज्ञासा है, सिर्फ इंक्वायरी है। हमारे प्राणों के अंतस्तल से जिसका हम साक्षात करते हैं, उसका संपर्क हो जाता है। जीवन का संपर्क केवल उनसे होता है जिनके मन खुले हैं। और जिनके मन ज्ञान से भरे हैं, वे बंद हो जाते हैं, वे कभी खुले होकर नहीं देख पाते।
एक जगह ऐसा हुआ, चीन के बाजार में बहुत बड़ा मेला भरा हुआ था। एक कुआं
भी था उस मेले में, लेकिन उस कुएं पर कोई पाट न थी, कोई घाट नहीं था, कोई दीवाल नहीं थी। एक आदमी मेले को देख रहा था, भीड़-भड़क्के में भूल गया और पीछे हटता चला गया भीड़ में और उस कुएं में गिर गया। जिन लोगों की नजरें दूसरों की तरफ लगी रहती हैं वे अक्सर कुओं में गिर जाते हैं। जो दूसरों को देखते रहते हैं उन्हें खुद का ख्याल ही नहीं रह जाता, वे अक्सर कुओं में गिर जाते हैं। वह भीड़-भाड़ को देखने में लगा था, वह दूसरे लोगों को देखने में लगा था, वह कुएं में गिर पड़ा। वहां भीड़ इतनी थी, शोरगुल इतना था कि किसी को पता भी नहीं चल सका कि कोई कुएं में गिर गया। वहां तो बाजार भरा हुआ था। वह आदमी चिल्लाने लगा कुएं से, लेकिन कुएं से बाहर जो थे, उन्हीं की बात सुननी कठिन थी, उसकी बात कौन सुनता? लेकिन एक संन्यासी, एक बौद्ध भिक्षु कुएं के पास से निकला, उसने नीचे आवाज सुनी, तो उसने झांक कर देखा, एक आदमी डूब रहा है, घबड़ा रहा है, चिल्ला रहा है, उसने एक दीवाल की ईंट पकड़ रखी है और चिल्ला रहा है मुझे निकालो! उसने कहाः भिक्षु जी मुझे बाहर निकालो! उस संन्यासी ने कहाः मेरे दोस्त, जीवन तो दुख है, बाहर भी निकल कर क्या करेगा? जीवन तो एक दुख है, जीवन तो एक पीड़ा है, जीवन में कोई सार नहीं, जीवन अनर्थ है। धन्य हैं वे जो जीवित नहीं हैं। जो जन्में नहीं वे और भी धन्य हैं। जो जन्मते हैं और जल्दी मुक्त हो जाते हैं, वे और भी धन्य हैं। तेरी मुक्ति आ गई, तू क्यों परेशान होता है? उस आदमी ने कहाः ये बातें फिर मुझे समझाना, मुझे पहले बाहर निकालो। लेकिन वह भिक्षु धम्मपद के सूत्र दोहराने लगा, और कहा, देख भगवान ने कहा है कि जरा दुख है, जन्म दुख है, जीवन दुख है, जीवन से मुक्त हो जाना ही आनंद है, तू क्यों जीवन में पड़ना चाहता है, जीवेषणा छो.ड़, यह लाइफ छोड़, यही तो दुख का कारण है, यही तो मूल है दुख का, यही तो अविद्या है, यही अज्ञान है। उस आदमी ने कहा कि मेरे भाई, यह सब सुनूंगा मैं, बाहर तो मुझे निकला लो। लेकिन वह भिक्षु कहने लगा, तुझे पता नहीं, सब अपने-अपने कर्मों का फल भोगते हैं। तूने किसी को पिछले जन्म में धक्का दिया होगा कुएं में, तो अब तुझे धक्का लगा है, अपना-अपना कर्मफल भोगना ही पड़ता है, इसके बिना निर्जरा नहीं होती। अपना फल भोग, घबड़ाता क्यों है, जैसे किया वैसा भोगना पड़ता है।
वह आदमी रोने लगा और चिल्लाने लगा कि सब ठीक है तुम्हारी बातें, लेकिन अभी नहीं, कम से कम मुझे कुएं के बाहर निकालो। उस भिक्षु ने कहाः मैं किसी के कर्म के बीच में बाधा नहीं आता। तुम अपने मार्ग पर जा रहे हो, अपने कर्मों का फल भोग रहे हो, मैं अपने मार्ग पर जा रहा हूं। अगर मैं तुम्हें बाहर निकाल लूं और तुम कल किसी की हत्या कर दो, तो मैं भी तो कर्मभागी हो जाऊंगा, दोषी हो जाऊंगा। शास्त्र ऐसा कहते हैं कि अगर तुम किसी को बचा लो

और वह कल चोरी कर ले, तुम न बचाते न वह चोरी करता, तो तुम भी उस चोरी में भागीदार हो गए। उस भिक्षु ने कहाः भई, मुझे क्षमा कर, मैं जाता हूं, मैं इस झंझट में नहीं पड़ता। कल तू क्या करे, मुझे क्या पता? वह भिक्षु आगे बढ़ गया, वह नीचे पड़ा आदमी चिल्लाता रहा। वह आदमी उस भिक्षु को दिखाई नहीं पड़ा, उसके बीच शास्त्र आ गए, ग्रंथ आ गए, शब्द आ गए, सिद्धांत आ गए। वह आदमी मर रहा है यह दिखाई नहीं पड़ा, उसे दिखाई पड़ गए, अपने ग्रंथ, अपने सूत्र, अपने सिद्धांत, यह मरता हुआ आदमी उसे दिखाई नहीं पड़ रहा।
उसके पीछे ही एक कनफ्यूशियस को मानने वाला एक दूसरा भिक्षु आ गया। और नीचे चिल्लाए जा रहा है वह आदमी, इस भिक्षु को देख कर फिर उसे भय हुआ कि पता नहीं यह निकालेगा की नहीं निकालेगा? लेकिन मजबूरी थी, उसे चिल्लाना पड़ा। उस कनफ्यूशियस को मानने वाले भिक्षु ने कहाः मेरे मित्र तुझे पता नहीं है, कनफ्यूशियस ने अपनी किताब में लिखा है कि हर कुएं पर घाट जरूर होना चाहिए। जिस राज्य के कुएं पर घाट नहीं होते, वह राजा अधार्मिक है। तू बिल्कुल मत घबड़ा, हम जाएंगे और प्रचार करेंगे, अभी मैं मेले में जाता हूं और सभा करूंगा। और कहूंगा कि हर कुएं पर घाट होना चाहिए। उस आदमी ने कहाः वह ठीक है, लेकिन अभी मैं मर रहा हूं। उसने कहाः तेरा सवाल नहीं है, यह सवाल कुएं पर घाट होने का है। होता घाट, तू गिरता नहीं। होंगे घाट, कभी कोई गिरेगा नहीं। यह एक आदमी का सवाल नहीं। आदमी तो आते हैं और चले जाते हैं, समाज बचा रहता है। वह कुछ सोशिएलिस्ट, कुछ समाजवादी बुद्धि का होगा, उसने कहा, समाज बचा रहता है, आदमी तो आते हैं, चले जाते हैं। व्यक्तियों का कोई मूल्य नहीं है, तू मर भी जाएगा तो कोई हर्ज नहीं, लेकिन तेरे कारण एक प्रेरणा मुझे मिल गई, मैं आंदोलन चलाऊंगा। वह आदमी चिल्लाता रहा, वह भिक्षु जाकर आंदोलन चलाने लगा।
नेता इसी तरह के लोग होते हैं दुनिया में। वे आदमी को नहीं देखते, आंदोलन मूल्यवान होते हैं। वह जाकर भीड़ में उसने सभा शुरू कर दी। और लोगों से कहा कि आंदोलन चलाओ, राज्य के प्रत्येक कुएं पर घाट होना चाहिए। वह देखो, एक आदमी सामने मर रहा है।
वह आदमी तो हैरान रह गया! लेकिन कोई उपाय नहीं था। और थोड़ी देर बीते,
वह बिल्कुल मरने के करीब है, तब एक ईसाई मिश्नरी वहां पहुंच गया। उसने भी झांक कर देखा, वह आदमी चिल्लाया कि मुझे बचाओ! उसने कहा कि बिल्कुल मत घबड़ाओ, उसने जल्दी से रस्सी फेंकी, जैसे कि वह रस्सी अपने साथ ही रख कर चलता हो। वह ईसाई मिश्नरी अपने बैग में रस्सी रखे हुए था। उसने जल्दी से रस्सी फेंकी, वह उतरा और उस आदमी को बाहर निकाला। उस आदमी ने कहा कि धन्य हैं आप, मुझे भी ईसाई बना लें। क्योंकि वे दो धर्मों के लोग अभी होकर गए उन्होंने तो मुझे बचाया भी नहीं। उस ईसाई मिश्नरी ने कहा कि इसीलिए हमने तुम्हें बचाया है कि तुम ईसाई हो जाओ। और कोई कारण नहीं है हमारा बचाने का। तुम यह मत सोचना कि हमने तुमको बचाया, हम तो अपने ईसाई बनाने की कोशिश में रस्सी हमेशा साथ ही रखते हैं। कोई कुएं में गिर जाए, तो फौरन डाल दो। हम तो इस तलाश में ही घूमते हैं कि कोई कुएं में गिरे और ईसाई बनाने का मौका मिले। और तू यह मत सोच कि हमें कुछ ईसाई बनाने से तुझमें कोई उत्सुकता है, असल में जीसस क्राइस्ट ने कहा है जो लोगों की सेवा करेगा, वही स्वर्ग के राज्य का अधिकारी होगा। हम स्वर्ग का राज्य खोज रहे हैं, हमें सेवा करनी जरूरी है। तो अच्छा है कि कुओं पर घाट न हों, ताकि लोग गिरते रहें और हम सेवा करते रहें। तेरे बच्चे भी गिरें, उनके बच्चे भी गिरें इस कुएं में, ताकि हमें सेवा का मौका मिलता रहे। दुनिया ऐसी चाहिए जिसमें सेवा का मौका हमेशा उपलब्ध रहे, क्योंकि बिना सेवा के कोई मोक्ष नहीं जा सकता।
उन तीन लोगों के सामने वह कुएं में डूबता और मरता हुआ एक आदमी था, लेकिन वह आदमी उन तीनों में से किसी को भी दिखाई नहीं पड़ा। बीच में आ गए सब, बीच में आ गए सिद्धांत, बीच में आ गए धर्म, बीच में आ गए मसीहा, मोक्ष, सब आ गया, लेकिन वह आदमी, वह दिखाई नहीं पड़ा।
जिनकी आंखें ज्ञान से भर जाती हैं, उन्हें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। ज्ञान से ज्यादा अंधा करने वाली और कोई चीज नहीं है। इसलिए बूढ़े अंधे हो

जाते हैं, बच्चों के पास आंखें होती हैं। लेकिन वे बूढ़े धन्य हैं जो सारे जीवन के दौड़ने के बाद भी बच्चों की आंखें अपने में बचाने में समर्थ हो जाते हैं, पात्र हो जाते हैं। बच्चों की आंख जो बूढ़ा बचा लेता है वह जीवन के सत्य को भी जान लेता है। बच्चे की आंख का मतलब हैः विस्मय-विमुग्धता का भाव। और जीवन जैसा है बिना शब्दों के देखने की सामर्थ्य। जीवन जैसा है जो कुछ है उसे बिना सिद्धांतों के सीधा, इमिजिएट और डायरेक्ट देखने की, देखने की व्यवस्था है। हम कभी भी जीवन को सीधा नहीं देखते, हमेशा सिद्धांतों के द्वारा देखते हैं।
एक आदमी मुझे मिलता है, वह मुझसे पूछता है कि आप, आप किस धर्म को मानते हैं? अगर वह मुसलमान है और मैं कह दूं कि मैं मुसलमान धर्म को मानता हूं, तब वह मुझे और ढंग से देखता है, और अगर मैं कह दूं, मैं हिंदू हूं, मैं मुसलमान धर्म को नहीं मानता, तो वह मुझे और ढंग से देखता है। अगर मैं कह दूं कि मैं नास्तिक हूं, मैं धर्मों को मानता ही नहीं, तो वह मुझे और ढंग से देखता है। तीनों हालतों में मैं मैं ही हूं, लेकिन तीनों हालतों में उसके देखने के ढंग बदल जाते हैं। वह मुझे नहीं देखता, बीच में कोई चीज आ गई है, उसके द्वारा देखता है। और जब भी कोई आदमी जीवन को किसी चीज के माध्यम से देखता है, तब वह जीवन को नहीं देख पाता है। और जीवन को ही नहीं जो देख पाता वह परमात्मा को कभी नहीं देख पाएगा, क्योंकि परमात्मा जीवन में जो सारभूत है, जीवन में जो प्राणभूत है, जीवन ही तो परमात्मा है। लेकिन हम तो कुछ भी नहीं देख पाते। हमारा देखना एकदम अंधा देखना है। क्योंकि सब जगह ज्ञान, सब जगह ज्ञान, सब जगह शास्त्र हमें घेरे हुए हैं, हम उन्हीं के माध्यम से देखते हैं। हम जान ही नहीं पाते।
एक फकीर था, मुल्ला नसरुद्दीन। एक मित्र ने उसे कुछ, कुछ मांस भेंट कर दिया। और साथ में एक किताब भी दे दी, जिसमें मांस पकाने की विधि लिखी हुई थी। पाकशास्त्र रहा होगा वह। तो वह किताब और मांस लेकर अपने घर की तरफ खुशी से चला। वह अपनी खुशी में भागा जा रहा था और एक चील ने झपट्टा मारा और उसका मांस ले गई। उसने चील को देखा और कहाः मूर्ख, लेजा, मांस का क्या करेगी, किताब तो मेरे पास है, बनाने की तरकीब मेरे पास है। वह अपने घर पहुंचा और अपनी पत्नी से कहाः बड़ा मजाक हो गया है, एक चील मूर्ख बन गई है। मांस ले गई मूर्ख, उसको पता नहीं कि बनाने की तरकीब मेरे पास है। उसकी पत्नी ने कहा कि धन्य हो पंडितराज, तुम धन्य हो। चील को किताबों की जरूरत नहीं है, चील का मांस से सीधा संबंध हो जाता है। इस किताब की आदमियों को जरूरत है।
मजाक चील के साथ नहीं, तुम्हारे साथ हो गई है। मूर्ख तुम बन गए हो। लेकिन हम सबके साथ यह मजाक हो गई है। जिंदगी से कोई सीधा संबंध नहीं है। बीच में किताबें हैं। और हम सोचते हैं किताब हमारे हाथ में हैं तो सब कुछ हमारे हाथ में है। जिसके हाथ में सिर्फ किताब है, उसके हाथ में कुछ नहीं है, उसका हाथ खाली है। और खाली हाथ से भी बदतर है, क्योंकि खाली हाथ में कभी कुछ हो सकता था, जिसका हाथ पहले से कचरे से भरा हुआ है उसके हाथ में कभी भी कुछ नहीं हो सकेगा। जिंदगी को जानना और जीना है, किताबों को ढोना नहीं है। लेकिन हम सारे लोग किताबों को ढोकर ज्ञानी बने हुए हैं। और इसलिए हमारा धर्म से, सत्य से, प्रभु से कोई संबंध नहीं हो पाता है।
दूसरा सूत्रः ज्ञान नहीं, विस्मय। बूढ़ी आंखें नहीं, अनुभव से बूढ़ी आखें नहीं, सीखी हुई बूढ़ी आंखें नहीं; अनसीखी हुई, अनलर्नड, सीधी, सरल, बच्चों जैसी इनोसेंट, निर्दोष आंखें, वे ही आंखें जीवन के सत्य को उघाड़ने में समर्थ होती हैं। यह मैंने दूसरे सूत्र के संबंध में थोड़ी सी बात कही, कल सुबह तीसरे सूत्र के संबंध में आपसे कहूंगा।

मेरी बातों को इतनी शांति और इतने प्रेम से सुना, मैं उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं।
मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

अमृत द्वार
चौथा प्रवचन

अपने स्वधर्म की खोज

मेरे प्रिय आत्मन्!
कल की चर्चाओं के आधार पर बहुत से प्रश्न पूछे गए हैं। एक मित्र ने पूछा है कि मैं क्या स्वयं एक उपदेशक नहीं हूं? मैं बोलता क्यों हूं? समझाता क्यों हूं? और अगर मैं उपदेश देता हूं, तो फिर मैं दूसरे उपदेशकों के विरोध में क्यों हूं?

इस संबंध में दो-तीन बातें समझ लेनी उपयोगी होंगी। पहली बात, सभी लिखा हुआ शास्त्र नहीं होता और सभी बोला हुआ उपदेश नहीं होता। जिस बोलने के साथ यह आग्रह होता है कि यही सत्य है और इसके अतिरिक्त कुछ भी सत्य नहीं है, जिस बोलने के साथ यह आग्रह होता है कि जो मैं कहता हूं उस पर इसलिए विश्वास करो, क्योंकि मैं कहता हूं; जिस बोलने के लिए श्रद्धा की मांग की जाती है, अंधी श्रद्धा की; वह बोलना उपदेश बन जाता है। मेरी न तो यह मांग है कि मैं जो कहता हूं उस पर आप विश्वास करें, मेरी तो मांग ही यही है कि उस पर भूल कर भी विश्वास न करें। न ही मेरा यह कहना है कि जो मैं कहता हूं वही सत्य है। इतना ही मेरा कहना है कि किसी के भी कहने के आधार पर सत्य को स्वीकार मत करना। मेरे कहने के आधार पर भी नहीं। सत्य तो प्रत्येक व्यक्ति की निजी खोज है। कोई दूसरा किसी को सत्य नहीं दे सकता है। मैं भी नहीं दे सकता हूं, कोई दूसरा भी नहीं दे सकता है। सत्य दिया नहीं जा सकता, पाया जरूर जा सकता है। इसलिए मैं जो कह रहा हूं, उससे आपको कोई सत्य की शिक्षा दे रहा हूं, ऐसा नहीं है।
फिर पूछा है कि मैं फिर उपदेश क्यों दे रहा हूं?
न ही मुझे इसमें कोई आनंद उपलब्ध होता है कि आप जो मैं कहूं उसकी प्रशंसा करें, उसके लिए तालियां बजाएं, उसका समर्थन करें, न ही मेरा यह कोई व्यवसाय है, फिर भी मैं क्यों कुछ बातें कह रहा हूं? एक आदमी को दिखाई पड़ता हो कि आप जिस रास्ते पर जा रहे हैं, वह रास्ता गड्ढों में, कांटों में ले जाने वाला है, और वह आपसे कह दे कि इस रास्ते पर कांटें हैं और गड्ढे हैं, वह आपको कोई उपदेश नहीं दे रहा है। वह केवल इतना कह रहा है कि जिस रास्ते से मैं परिचित हूं, उस रास्ते पर उसी गड्ढे में, उन्हीं कांटों में किसी को जाते हुए देखना अमानवीय है, चुपचाप देखना अमानवीय है, अत्यंत हिंसक कृत्य है। सड़क के किनारे प्रकाश के खंभे लगे हुए हैं, स्ट्रीट लाइट लगे हुए हैं। जिस आदमी ने सबसे पहले फिलाडेल्फिया में सबसे पहला रास्ते के किनारे
का प्रकाश लगाया, वह था, बेंजामिन फ्रेंकलिन। तब तक दुनिया में रास्तों के किनारे कोई प्रकाश नहीं लगाए जाते थे। रास्ते अंधेरे होते थे। बेंजामिन फ्रेंकलिन ने सबसे पहले अपने घर के सामने एक बत्ती लगाई, एक खंभा लगाया। पड़ोस के लोगों ने कहाः क्या तुम यह दिखलाना चाहते हो कि तुम्हारे पास पैसे हैं? क्या तुम यह दिखलाना चाहते हो कि तुम्हारे घर में बड़ा प्रकाश है? यह प्रकाश किसलिए लगाना चाहते हो? क्या घर की सजावट करना चाहते हो? बेंजामिन फ्रेंकलिन ने कहा कि नहीं, रास्ते पर ऊबड़-खाबड़ पत्थर हैं, रात में यात्री भटक जाते हैं, कोई गिर भी जाता है, रास्ता खोजना मुश्किल हो जाता है, इसलिए मैं एक प्रकाश लगाता हूं कि राह चलने वाले लोगों को मेरे घर के सामने के पत्थर तो कम से कम दिखाई पड़ें। कोई उनसे टकरा न जाए और गिर न जाए। उसने तो प्रकाश लगा दिया।
वह बड़े धार्मिक भाव से रोज संध्या अपना दीया जला देता घर के सामने का, लेकिन पड़ोस के लोग उसके दीये को उठा कर ले जाते। कोई उसका दीया बुझा जाता। जिनके लिए वह दीया लगाया गया था, वे ही उसको बुझा देते और दीये को उठा कर ले जाते थे। लेकिन धीरे-धीरे वह रोज लगाता ही गया उस दीये को, न तो वह प्रकाश के संबंध में कोई घोषणा कर रहा था, न कोई प्रचार कर रहा था। लेकिन उसके ही घर के सामने लोग अंधेरे में टकरा जाएं, यह उससे नहीं देखा गया। इसलिए उसने प्रकाश का एक दीया अपने घर के सामने जलाता रहा।

धीरे-धीरे लोगों के समझ में आनी बात शुरू हो गई। राहगीरों को दूर से
ही अंधेरे रास्ते पर वह प्रकाश दिखाई पड़ने लगा। और वह प्रकाश राहगीरों को कहने लगा कि आ जाओ यहां रास्ता सुगम है। यहां प्रकाश है, अंधेरा नहीं है। यहां पत्थर दिखाई पड़ते हैं। और जब राहगीर उस प्रकाश के पास आते, तो वह प्रकाश उनसे कहने लगा कि देख कर चलना, सामने पत्थर है, पीछे की गली कहीं भी नहीं जाती है, पीछे जाकर मकान में समाप्त हो जाती है, वह कोई रास्ता नहीं है। वह प्रकाश बताने लगा कि मार्ग कहां है? और मार्ग कहां नहीं है? धीरे- धीरे गांव उस प्रकाश के प्रति आदर से भर गया। और धीरे-धीरे दूसरे लोगों ने भी अपने घरों के सामने दीये रखने शुरू कर दिए। और फिर फिलाडेल्फिया की नगर कमेटी ने सोचा कि क्यों न सभी रास्तों पर प्रकाश कर दिया जाए। फिर उस पूरे नगर में प्रकाश हो गया। फिर सारी दुनिया के हर गांव के रास्तों पर प्रकाश हो गया।
लेकिन एक आदमी ने जिसने पहली दफा वह प्रकाश लगाया था, लोगों ने उससे पूछा, किसलिए लगाते हो यह प्रकाश? क्या मतलब है तुम्हारा? क्या दिखलाना चाहते हो? और जिनके लिए लगाया गया था प्रकाश वे ही उसको बुझा-बुझा जाते थे।
मैं कोई उपदेशक नहीं हूं, लेकिन अगर मुझे दिखता हो कि मेरी आंखों के सामने ही कोई अंधेरे में भटकता है, और मुझे दिखता हो कि कोई पत्थर से टकराता है, और मुझे दिखता हो कि कोई दुख और पीड़ा के मार्गों को चुनता है, कोई अंधकार के मार्गों को चुनता है, तो न ही मैं उसे कोई उपदेश दे रहा हूं, लेकिन एक दीया अपने घर के सामने जरूर रखता हूं, हो सकता है उसे कुछ दिखाई पड़ जाए, हो सकता है जिन रास्तों पर वह भटक रहा है उसे दिखाई पड़ जाए कि कंटकाकीर्ण है, पत्थरों से भरे हैं, अंधेरे में ले जाने वाले हैं, उसे कोई बात बोध में आ जाए। नहीं कोई खुशी है इस बात की कि कोई भीड़ सुनने आती है या नहीं आती है; या कौन सुनता है, नहीं सुनता है। यह सवाल नहीं है। सवाल केवल इतना है कि मैं, मुझे दिखाई पड़ता हो कि जो रास्ता गलत है, अगर देखते हुए लोगों को उस पर चलने दूं तो मैं हिंसा का भागीदार हूं और पाप का जिम्मेवार हूं। वह मैं नहीं होना चाहता हूं। इसलिए कुछ बातें आपसे कहता हूं, लेकिन वे उपदेश नहीं हैं, आप मानने को बाध्य नहीं हैं, स्वीकार करने को बाध्य नहीं हैं, अनुयायी बनने को बाध्य नहीं हैं, कोई शिष्यत्व स्वीकार करने को बाध्य नहीं हैं। आप कोशिश भी करें मुझे गुरु बनाने की, तो मैं राजी नहीं हूं। आप मेरे पीछे चलना चाहें, तो मैं हाथ जोड़ कर क्षमा मांग लेता हूं, कोई को मैं पीछे चलने नहीं देता हूं। अगर मेरी किताब को आप शास्त्र बनाना चाहें, तो मैं उनमें आग लगवा दूंगा कि वे शास्त्र न बन पाएं।
यह जो मैं कह रहा हूं, किन्हीं दूसरे शास्त्रों के विरोध में, वह किसी किताब के विरोध में नहीं कह रहा हूं।
यह भी पूछा है उन्होंने कि आप शास्त्र के विरोध में कहते हैं, और आपकी किताबें छपती हैं और बिकती हैं?
किताबों के मैं विरोध में नहीं हूं, शास्त्रों के विरोध में हूं। शास्त्रों और किताबों में फर्क है। किताब सिर्फ निवेदन है, शास्त्र सत्य की घोषणा है, प्रामाणिक। शास्त्र कहता है, मुझे नहीं मानोगे तो नरक जाओगे। शास्त्र कहता है, जो मुझे मानता है वही स्वर्ग जाता है। शास्त्र कहता है, मुझ पर संदेह मत करना। वह प्रामाणिक है। वह ज्ञान की अंतिम रेखा है। उसके आगे आपको संदेह करने का सवाल नहीं है।
किताब ऐसा कुछ भी नहीं कहती, किताब का तो विनम्र निवेदन है कि मुझे ऐसा लगता है, वह मैं पेश कर देता हूं। गीता अगर किताब है, तो बहुत सुंदर है, और अगर शास्त्र है, तो बहुत खतरनाक है। कुरान अगर किताब है, तो बहुत स्वागत के योग्य है, लेकिन अगर शास्त्र है तो ऐसे शास्त्रों की अब पृथ्वी पर कोई भी जरूरत नहीं है। अगर महावीर के वचन और बुद्ध के वचन किताबें हैं, तो ठीक है, वे हमेशा-हमेशा पृथ्वी पर रहें, लोगों को उनसे लाभ होगा। लेकिन अगर वे शास्त्र हैं, तो उन्होंने काफी अहित लोगों का कर दिया है। और अब उनकी कोई जरूरत नहीं है। मेरी बात आप समझे? मैं यह कह रहा हूं कि किताबें तो ठीक हैं, शास्त्र ठीक नहीं हैं। जब कोई किताब पागलपन से भर जाती है और पागलपन

की घोषणा करने लगती है--किताब तो क्या करेगी--जब उसके अनुयायी करने लगते हैं, जब अनुयायी किसी किताब के संबंध में विक्षिप्त घोषणाएं करने लगते हैं, तो वह शास्त्र हो जाती है। जब कोई किताब ऑथेरिटी बन जाती है, तब वह शास्त्र हो जाती है।
मेरी कोई किताब शास्त्र नहीं है। दुनिया की कोई किताब शास्त्र नहीं है। सब किताबें किताबें हैं। सब विनम्र निवेदन हैं, उन लोगों के जिन्होंने कुछ जाना होगा, कुछ सोचा होगा, कुछ पहचाना होगा। उनके विनम्र निवेदन हैं। आप उन्हें मानने को बाध्य नहीं हैं। लेकिन आप उन्हें जानें, उनसे परिचित हों, यह ठीक है। लेकिन जो जान लें पढ़ कर और परिचित हो जाएं, उसको ज्ञान समझ लें, तो गलती पर हैं। मैं यह नहीं कहता हूं कि कोई किताबों को न जाने, मैं यह कहता हूं कि किताबों से जो जाना जाएगा उसे कोई ज्ञान समझने की भूल न कर ले। वह ज्ञान नहीं है। किताबों से जो जाना जाता है, वह इनफार्मेशन है, सूचना है, नालेज नहीं, ज्ञान नहीं। मेरी किताबों से भी जो जानिएगा वह भी सूचना है, वह भी ज्ञान नहीं है।
अगर मैं यह कहूं कि दूसरों की किताबें तो गलत हैं और मेरी किताबें ठीक हैं, तो मैं भी एक फिर लंबी पागलों की कतार में एक पागल हूं। मेरी किताबें और दूसरों की किताबों का सवाल नहीं है, किताब से पाया गया ज्ञान नहीं होता है।
तो अगर आपने मेरी किताबें इसलिए खरीद ली हों कि उनसे ज्ञान मिल सकता है, कृपया उनको वापस कर दें। उनसे ज्ञान बिल्कुल नहीं मिल सकता है। किसी किताब से कभी नहीं मिल सकता। सूचनाएं मिल सकती हैं। सूचनाएं अगर आप उन्हें ज्ञान समझ लें, तो खतरनाक हो जाएंगी। और सूचनाएं अगर आपके भीतर प्यास को जगा दे, तो बड़ी सार्थक हो जाएंगी।
तीर्थंकर और पैगंबर और महापुरुष, अगर आप उन्हें गुरु बना लेते हैं, तो नुकसान हो जाता है। अगर वे सब आपके भीतर सोई हुई प्यास को जगाने वाले स्रोत हो जाएं, तो बहुत अदभुत बात है। अगर उनको देख कर आपको आत्मिक ग्लानि पैदा हो जाए। लेकिन हम बड़े होशियार लोग हैं। अगर, अगर महावीर यहां आपके बीच आ जाएं या बुद्ध या जीसस क्राइस्ट, तो होना यह चाहिए कि उनको देख कर आपके भीतर आत्मग्लानि पैदा हो जाए, यह ख्याल आ जाए कि मैं भी एक आदमी हूं और वह भी एक आदमी है। यह किस आनंद को, किस आलोक को उपलब्ध हो गया और मैं किस अंधेरे में भटक रहा हूं!
नहीं, लेकिन आपको आत्मग्लानि बिल्कुल न आएगी। आपको गुरु-पूजा पैदा होगी कि अदभुत अवतार आ गया है, चलो इसकी पूजा करें। आत्मग्लानि तो पैदा नहीं होगी, दूसरे की पूजा शुरू करेंगे आप। यह तो ख्याल पैदा नहीं होगा कि मैं कैसा मनुष्य हूं कि मैं भटक रहा हूं अंधेरे में और एक दूसरा मनुष्य प्रकाश को उपलब्ध हो गया है। आपको यह ख्याल होगा कि मैं तो मनुष्य हूं, यह आदमी मनुष्य से ऊपर है, महामानव है, सुपरमैन है, तीर्थंकर है, अवतार है। यह मनुष्य नहीं है, यह दूर का है, यह भगवान का पुत्र है, यह भगवान का भेजा हुआ संदेशवाहक है, इसके पैर पड़ो, इसकी पूजा करो। आत्मग्लानि से बचने का उपाय है पूजा। जो लोग किसी की पूजा करते हैं, वे बहुत बेईमान हैं। और सेल्फ डिसेप्शन में पड़े हुए हैं। वे अपने को धोखा दे रहे हैं। वे होशियार हैं बहुत, कनिंग हैं बहुत, चालाक हैं। वे यह कोशिश कर रहे हैं... आत्मग्लानि से बचने की तरकीब है पूजा। दूसरे की पूजा करने लगो, खुद की ग्लानि मिट जाती है। भूल ही जाते हैं कि हम भी कहीं हैं। दूसरे की महानता की चर्चा शुरू हो जाती है और खुद की क्षुद्रता भूल जाती है। होना उलटा चाहिए था कि खुद की क्षुद्रता दिखाई पड़नी चाहिए थी। खुद की क्षुद्रता दिखाई पड़ती, तो एक दूसरी दिशा में आपकी गति होती। और दूसरे की महानता दिखाई पड़ेगी सिर्फ और पूजा होगी, तो आपकी दिशा दूसरी होगी।
धर्म पूजा बन गया, साधना नहीं बन सका है। इसीलिए साधना पैदा होती है आत्मचिंतन और आत्मविचार से। और तथाकथित उपासना के धर्म पैदा होते हैं, पूजा और वर्शिप से।
तो अब तक हमने... दुनिया में जो भी ज्योतियां प्रकट हुईं, उन ज्योतियों
के आस-पास घुटने टेक कर आंखें बंद कर लीं और जय-जयकार करने लगे। बिना इस

बात की फिकर किए कि ज्योति जिनमें प्रकट हुई थी, वे ठीक हमारे जैसे मनुष्य हैं।
कोई ईश्वर का पुत्र नहीं है, और कोई अवतार नहीं है, और कोई तीर्थंकर नहीं है। सभी हमारे जैसे मनुष्य हैं। लेकिन अगर हम यह समझ लें कि वे हमारे जैसे मनुष्य हैं, तो हमको बड़ी कठिनाई हो जाएगी, बड़ी पीड़ा हो जाएगी, फिर हमारे सामने सवाल होगा कि हम क्यों पीछे पड़े हैं? हम क्यों अंधेरे में भटक रहे हैं? फिर हमको भी ऊपर उठना चाहिए? इससे बचने के लिए हमने कहा कि वे मनुष्य ही नहीं हैं। हम तो मनुष्य हैं, वे महामानव हैं। वे जो कर सकते हैं, हम कैसे कर सकते हैं? हमारा बीज ही अलग है, उनका बीज ही अलग है। वे अद्वितीय हैं, वे भिन्न ही हैं। तो हमने सबके चारों तरफ अद्वितीयता की महिमा को मंडित कर दिया है। उनके शब्दों के आस-पास सर्वज्ञता जोड़ दी कि वे बातें जो हैं सर्वज्ञों की कही हुई हैं, वे कभी भूल भरी नहीं हो सकतीं। हमने उनके आस-पास प्रामाणिकता जोड़ दी, आप्तता जोड़ दी, और इस आप्तता को जोड़ कर हमने वचनों को शास्त्र बना दिया। और जाग्रत पुरुषों को हमने अपौरुषेय बना दिया, उनको हमने महामहिम बना दिया, और परमात्मा के अवतार बना दिया। हमारे और उनके बीच हमने एक दूरी पैदा कर ली है। दूरी के कारण हम निश्चिंत हो गए, हमारी आत्मग्लानि समाप्त हो गई। मनुष्य-जाति इस कारण भटकी है, और आज भी हमारे इरादे यही हैं कि हम इन्हीं बातों को जारी रखें, तो हम आगे भी भटकने की ही तैयारी कर रहे हैं।
एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि क्या सभी धर्मों को जब मैं बीमारी कहता हूं... ?
कल ही मैंने कहा, कल ही किसी ने पूछा था कि तीन सौ धर्मों में सर्वश्रेष्ठ धर्म कौन सा है? आज फिर कोई उन्हीं के मित्र आ गए, वे शायद कल मौजूद नहीं थे। जहां तक तो वे जरूर मौजूद रहे होंगे। वे यह पूछ रहे हैं कि और सब धर्मों के बाबत तो आपने ठीक कहा, लेकिन जैन धर्म के बाबत आपकी बात बड़ी गड़बड़ है। यह जैन धर्म उनका धर्म होगा। ये पोलैंड के निवासी फिर उपलब्ध हो गए। मुसलमान कहेगा कि और सबके बाबत तो आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं, दो सौ निन्यानबे धर्मों के बाबत बिल्कुल सच है आपकी बात, जरा एक छोटी सी भूल कर रहे हैं, इस्लाम के बाबत आप ठीक नहीं कह रहे हैं। वही ईसाई कहेगा। वही हिंदू कहेगा। वही सब कहेंगे। वे सब कहेंगे कि दो सौ निन्यानबे के बाबत तो आपकी बात बिल्कुल ठीक है, एक के बाबत आपकी बात गलत है। और मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि दो सौ निन्यानबे को जाने दें भाड़ में, जिस धर्म को आप मानते हैं, उसी के संबंध में मैं कह रहा हूं, दूसरे धर्मों से क्या लेना- देना? वह एक धर्म जरूर गलत है, बाकी दो सौ निन्यानबे गलत हों या न हों। उनसे कोई मतलब नहीं है। उनसे कोई प्रयोजन नहीं है हमारा। मैं तो आपके ही धर्म के बाबत कह रहा हूं। जो भी आपका धर्म हो, चाहे जैन, चाहे हिंदू, चाहे मुसलमान। बड़ी सुविधा है इस बात में, क्योंकि दूसरे के धर्म गलत हों, तो बड़ी खुशी होती है मन में। पीड़ा तो वहां से शुरू होती है जहां आपको लगता है कि आपकी पकड़ भी, आपकी जकड़ भी तो कहीं गलत नहीं है?
उन मित्र ने यह भी पूछा है, और यह भी हो सकता है कि जैन साधु आज का जो धर्म प्रचार करते हैं वह गलत हो? लेकिन महावीर का उपदेश तो गलत नहीं हो सकता। आपको पता है कि महावीर का उपदेश क्या है? अभी महावीर यहां मौजूद हों, और इतने लोग उन्हें सुनें, और आप दरवाजे के बाहर जाकर पूछें कि उन्होंने क्या कहा? तो आप समझते हैं कि सभी लोग एक बात कहेंगे? जितने लोग होंगे उतनी बातें होंगी।
फ्रायड के बीस-पच्चीस मित्रों का एक समूह था। फ्रायड खुद ही एक मसीहा
था इस अर्थों में कि दुनिया में जिन लोगों ने कुछ विचारों की नई क्रांतियां की हैं, उनमें महावीर और बुद्ध के साथ ही फ्रायड का नाम भी खड़ा होगा। अगर वह हिंदुस्तान में पैदा होता, तो हम उसको भगवान की हैसियत देते। लेकिन गलती थी कि वह वहां यूरोप में पैदा हुआ। वहां कोई आदमी जल्दी भगवान नहीं बनता। उसके दस-पच्चीस मित्रों का जो पहला समूह था, एक दिन सांझ को फ्रायड ने अपने सारे शिष्यों को और मित्रों को बुलाया हुआ है भोजन पर। वे सब भोजन कर रहे हैं, फ्रायड भी भोजन कर रहा है। उन सब में विवाद शुरू हो गया

किसी बात पर कि इस संबंध में फ्रायड का क्या मंतव्य है? फ्रायड मौजूद है, वह बैठा भोजन कर रहा है। वे पच्चीसों मित्र आपस में लड़ने लगे, हरेक कहने लगा कि नहीं, यह मतलब नहीं है फ्रायड का, फ्रायड का मतलब और है। यह मतलब यह है। वे पच्चीसों विवाद करने लगे, घंटे भर में विवाद में इतने लीन हो गए कि वह यह भूल ही गए कि फ्रायड मौजूद है, उससे क्यों न पूछ लें कि तुम्हारा मतलब क्या है? फिर फ्रायड ने कहा कि मित्रो, मेरे सोने का समय हो गया है, और मैं तुमसे एक प्रार्थना करता हूं कि जो काम मेरे मरने के बाद करना था, तुम मेरी जिंदगी में और मेरे सामने कर रहे हो? मैं मर जाऊं तब तुम तय करना कि फ्रायड का क्या उपदेश है? अभी तो मैं जिंदा हूं, मुझसे पूछ सकते हो, लेकिन तुम्हें मुझसे पूछने की फुरसत नहीं है। तुम आपस में तय कर रहे हो कि मेरा मतलब क्या है?
महावीर का क्या मतलब है? श्वेतांबर से पूछो, वह कहता है, और मतलब है; दिगंबर से पूछो, वह कहता है, और मतलब है। स्थानकवासी से पूछो, वह कहता है, और मतलब है। तेरह-पंथी से पूछो, वह कहता है, और मतलब है। अभी यही तय नहीं हो सकता कि महावीर नंगे रहते थे कि वस्त्र पहनते थे? उपदेश तो बहुत दूर की बात है। कोई कहता है, वस्त्र पहनते थे; कोई कहता है, नंगा रहते थे। अभी यह भी तय नहीं हो सका है कि महावीर की शादी हुई थी कि नहीं हुई थी? दिगंबर कहता है कि शादी कभी नहीं हुई, महावीर जैसा पुरुष कहीं शादी कर सकता है? श्वेतांबर कहते हैं कि शादी तो हुई ही थी, लड़की भी पैदा हुई थी, लड़की का दामाद भी था। इन बातों पर ही तय नहीं हो पाता तो उपदेश पर आप क्या तय करेंगे कि महावीर ने क्या कहा था?
जैनों में एक तीर्थंकर हुए, मल्लीनाथ। मल्लीनाथ के बाबत अभी तक यह ही
तय नहीं हो पाया है कि वह स्त्री थे कि पुरुष थे। श्वेतांबर कहते हैं उनका नाम था मल्ली बाई और दिगंबर कहते हैं उनका नाम था मल्लीनाथ। हद्द मजा है। और आप यह तय कर रहे हैं कि उनका उपदेश क्या था? उन्होंने क्या कहा? अभी यही तय करना मुश्किल है कि वह स्त्री थे कि पुरुष थे।
आदमी थोपता है दूसरे के ऊपर कि उसका क्या मतलब है? गीता की एक हजार टीकाएं लिखी गई हैं। या तो कृष्ण का दिमाग खराब रहा होगा, अगर उनकी एक ही बात में हजार मतलब हों। और या फिर टीकाकारों का दिमाग खराब रहा होगा। कृष्ण ने तो वही कहा है जो कहा है, लेकिन यह कौन तय करे कि उन्होंने क्या कहा है? मैं एक तरह से तय करता हूं, आप दूसरी तरह से तय करते हैं, तीसरा आदमी तीसरी तरह से तय करता है। एक ही बात के हजार अर्थ हो सकते हैं। लेकिन इस विवाद में क्यों पड़ना कि महावीर ने क्या कहा है? महावीर ने जिस चेतना में प्रवेश करके जाना था वह चेतना आपके पास मौजूद है, प्रवेश करिए और जानिए। महावीर को तय करने की क्या जरूरत है? अदालत बैठाने की क्या जरूरत है कि उन्होंने क्या कहा? टीकाएं लिखने की क्या जरूरत है? आप भी वही हो सकते हैं जो महावीर थे। तो फिर वही होकर जान लीजिए। फिर क्या जरूरत है कि आप तय करें, ढाई हजार साल पहले कोई आदमी हुआ कि नहीं हुआ? क्या कहा उसने कि नहीं कहा? इससे प्रयोजन क्या है?
मैं एक गांव में बोलने गया था। बोलने के बाद एक पंडित खड़े हो गए और उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं तीन वर्षों से एक रिसर्च कर रहा हूं, एक शोधकार्य कर रहा हूं। मैं यह पता लगाना चाहता हूं कि बुद्ध और महावीर दोनों एक ही समय में हुए, उसमें उम्र किसकी ज्यादा थी? बुद्ध की उम्र ज्यादा थी कि महावीर की उम्र ज्यादा थी? मैंने कहाः उनकी उम्र तय करने में तुम अपनी उम्र क्यों खराब कर रहे हो? और तीन साल तुम्हारे खराब हो गए, उसमें से किसी की भी ज्यादा हो, इससे क्या फर्क पड़ता है, यह दुनिया में कौन सा अहम मसला है? लेकिन यह आदमी अगर तय कर लेगा तो यह पी एचडी हो जाएगा। इसको एक रिसर्च की डिग्री मिल जाएगी, यह डाक्टर कहलाएगा। और लोग... से देखेंगे कि यह आदमी डाक्टर है।
यह आदमी पागल है। यह आदमी यह तय कर रहा है कि बुद्ध महावीर से बड़े थे
कि महावीर बुद्ध से बड़े थे? यह सब खोज-बीन करके यह तय करेगा, और इस बीच यह अपनी उम्र खराब करेगा।

मेरी दृष्टि में सत्य को किसने कैसा जाना और किसने क्या कहा, यह निर्णय करने की न तो कोई जरूरत है, न कोई उपयोगिता है, न कोई अर्थ है। जब कि हम स्वयं सत्य को जानने के हकदार और मालिक हो सकते हैं। जब कि मैं सीधा ही सत्य का साक्षात्कार कर सकता हूं। जब कि मैं खुद ही वहां हो सकता हूं जहां महावीर और बुद्ध थे। तो मैं इसकी क्या फिकर करूं कि कौन वहां था और उसने क्या कहा है? यह तो तब करने की जरूरत थी जब मैं न वहां पहुंच सकूं, तो यह बात निर्णय करने की जरूरत थी कि हम यह निर्णय करें कि उन्होंने क्या कहा है?
लेकिन मेरी समझ में प्रत्येक व्यक्ति अधिकारी है, जन्म से अधिकारी है
उस सब को पा लेने का जो कभी भी किसी व्यक्ति ने पाया हो। इसलिए कोई आवश्यकता नहीं है कि आप पीछे लौट कर फिकर करने जाएं। भीतर जाकर जानने की जरूरत है, पीछे लौट कर नहीं। पच्चीस सौ साल पीछे नहीं लौटना है, पच्चीस कदम अपने भीतर उतर जाएं, तो सब जान लेंगे जो पच्चीस सौ साल पीछे उतर कर आप नहीं जान सकते। और अगर निर्णय भी कर लिया, उससे क्या हल होना है?
उन मित्र ने यह भी पूछा है कि किसी और ने, कि धर्मग्रंथों में क्या सब फिजूल बातें लिखी हैं?
यह मैंने कब कहा, यह मैंने कब कहा कि धर्मग्रंथों में सब फिजूल बातें लिखी हैं? लेकिन धर्मग्रंथों को जो अंधे की भांति पकड़ लेता है, उसका पकड़ा हुआ सब फिजूल होता है। वह उसके अंधेपन के कारण फिजूल होता है। सवाल यह नहीं है कि धर्मग्रंथों में क्या लिखा है और क्या नहीं लिखा है, सवाल यह है कि आप अंधे होकर पकड़ते हैं या आंख खुली होकर जीवन को खोजते हैं? अगर आप अंधे होकर पकड़ते हैं, तो आप जो भी पकड़ लेंगे, वह फिजूल होगा, वह दो कौड़ी का होगा। यह प्रश्न नहीं है कि वहां जो लिखा है ठीक है या नहीं? ठीक का निर्णय कौन करेगा? अंधे आदमी बैठ कर निर्णय करेंगे कि प्रकाश के संबंध में जो लिखा है वह ठीक है या नहीं? तो खूब निर्णय हो जाएगा उनसे फिर। सिरफुटव्वल हो जाएगी। लकड़ियां चल जाएंगी, हत्याएं हो जाएंगी। अंधे क्या निर्णय करेंगे कि प्रकाश के संबंध में कही गई कौन सी बात सच है? कोई निर्णय उससे होने का नहीं है। कौन तय करेगा कि क्या ठीक है? आप ही तो तय करेंगे न? अगर आप गीता पढ़ कर भी निर्णय करेंगे कि यह बात ठीक है, तो यह निर्णय कृष्ण का नहीं है, यह आपका निर्णय है। और आपकी स्थिति क्या है? अगर आप जानते होते तो गीता से पूछने नहीं जाते। आप नहीं जानते हैं तो गीता से पूछने गए हैं। और गीता में पढ़ कर आप जो निर्णय करेंगे वह निर्णय आपका ही है कि गीता का क्या अर्थ है।
बुद्ध एक रात भिक्षुओं की एक सभा में बोलते थे। कोई दस हजार भिक्षु थे। वे बुद्ध की बातें सुने। एक चोर भी उस रात सभा में सुनने आ गया था। चोर भी धर्म सभाओं में बहुत जाते हैं। क्योंकि उनको बड़ा भय लगा रहता है कि कहीं कोई गड़बड़ चल रही है, या कुछ गड़बड़ न हो जाए। तो वे काफी धर्म सभाओं में जाते हैं, धर्मग्रंथ भी खरीदते हैं और रखते हैं पास। क्योंकि पीछे कभी उनसे भी कुछ रास्ता मिल सकता है। एक चोर भी पहुंच गया था। एक वेश्या भी पहुंच गई थी उस सभा में। बुद्ध तो रोज बोलते थे, रोज उनका नियम था, बोलने के बाद वे भिक्षुओं को कहते थे, अब जाओ, रात्रि का अंतिम कार्य करो। यह मतलब यह था कि भिक्षु रोज रात्रि को अंतिम ध्यान के लिए जाते थे, और ध्यान करके सो जाते थे। तो रोज-रोज कहने की कोई जरूरत न थी, बुद्ध इतना कह देते थे, अब आज की बात पूरी हुई, अब आप रात्रि के अंतिम कार्य में लगें। बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को कहा कि भिक्षुओ, जाओ, रात्रि का अंतिम कार्य करो।
चोर को ख्याल आया, अरे! मैं कहां बैठा, कब से यह बातचीत सुन रहा हूं? जाऊं अपना काम करूं रात्रि का। व्यवसाय का समय हो गया, मेरी दुकान खुलने का वक्त हो गया। वेश्या को ख्याल आया कि बड़ी रात बीत गई, उसके ग्राहक आने शुरू हो गए होंगे, वह जाए, रात का अपना काम करे।
बुद्ध ने कहा कि रात का कार्य करोः भिक्षु ध्यान करने चले गए, वेश्या वेश्यालय में चली गई, चोर चारी करने चला गया। कहने वाला एक ही था, कही गई बात एक ही थी; तीन ने सुनी, तीन अर्थ हो गए। तीन अगल अर्थ हो गए।

इस भूल में मत रहना कि जब आप कृष्ण के वचन पढ़ते हो, तो आप कृष्ण के वचन
पढ़ रहे हो, आप खुद को ही कृष्ण के वचनों में पढ़ लेते हो। हर आदमी अपने को ही पढ़ता है, किसी दूसरे को कोई नहीं पढ़ सकता है। हम अपने को ही पढ़ लेते हैं। किताबें आईने बन जाती हैं, हमारी ही तस्वीर और हमारी ही शक्ल उनमें दिखाई पड़ती है।
इसीलिए तो एक-एक किताब की हजारों टीकाएं हो जाती हैं। गीता की टीका तिलक ने लिखी, उसको पढ़ें। गीता की टीका गांधी ने लिखी, उसको पढ़ें। गीता की टीका अरविंद ने लिखी, उसको पढ़ें; विनोबा ने लिखी उसको पढ़ें। आप पाएंगे कि ये एक ही किताब के बाबत लिख रहे हैं ये लोग कि अलग-अलग किताबों के बाबत? ये चारों आदमी अपनी-अपनी तस्वीर देख रहे हैं, गीता से किसी का कोई मतलब नहीं, कोई प्रयोजन नहीं। गीता बहाना है अपनी तस्वीर फिर से देख लेने का।
तो कोई भी जब पढ़ता है और समझता है, तो अपने को ही पढ़ता और समझता है। इसलिए जितनी महत्वपूर्ण चेतना आपकी होगी जीवन में आपको उतनी ही बातें दिखाई पड़नी शुरू हो जाएंगी, जितनी गहरी आपकी अंतर्दृष्टि होगी जीवन में उतना ही आपको दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा। अगर आंखें अंधी हैं, तो गीता में भी धर्म नहीं मिल सकता और अगर आंखें खुली हैं, तो रास्ते के किनारे पड़े पत्थर में भी आपको धर्म का पूरा संदेश दिखाई पड़ जाएगा। अगर चेतना सोई हुई है, तो कोई धर्मग्रंथ उसे नहीं जगा सकता है। और चेतना अगर जागी हुई है, तो सारी पृथ्वी धर्मग्रंथ हो जाती है। सब संदेश परमात्मा के संदेश हो जाते हैं। सब इशारे उसके इशारे हो जाते हैं। सब लहरें उसकी लहरें हो जाती हैं। सब ध्वनियां उसकी ध्वनियां हो जाती हैं।
लेकिन इसके पहले कि सारा जीवन एक धर्मगं्रथ बन जाए, परमात्मा की किताब बन जाए, उसके पहले जरूरी है कि आदमियों की किताबों के संबंध में हमारे जो बहुत मोह हैं, वे छूट जाएं। मुझे किताबों से क्या लेना-देना? मुर्दा किताबों से झगड़ा करके मुझे क्या फायदा है? जब मैं यह कह रहा हूं सारी बातें, तो मैं किसी किताब के खिलाफ नहीं कह रहा हूं, यह मैं आपके खिलाफ कह रहा हूं, यह आपकी पकड़, जो क्लिगिंग है दिमाग की कि किताबों को हम पकड़ लें और उनको पकड़ कर हम निश्चिंत हो जाएं। मैं आपकी पकड़ पर चोट कर रहा हूं, किताबों पर क्या चोट करूंगा? किताबें तो बिल्कुल निर्जीव हैं, उनको मारने की कोई जरूरत नहीं, वे मरी हुई हैं। लेकिन आपकी पकड़ बड़ी मजबूत है और जिंदा है, उसको ढीला करने की जरूरत है।
तो जब मैं चोट करता हूं, चोट करता हूं आप पर, आप समझते हैं मैंने गीता
पर चोट की, बेचारी गीता से मुझे क्या लेना-देना, चोट करता हूं आप पर। आप बड़े गुस्से से भरे जाते हैं कि मैंने महावीर पर चोट कर दी। महावीर से मुझे क्या लेना-देना, चोट करता हूं आप पर कि आपकी यह जो पकड़ है।
जब आप पूछते हैं कि धर्मग्रंथों में क्या कोई भी ठीक बात नहीं लिखी हुई है? आप क्यों पूछ रहे हैं यह? आप इसलिए पूछ रहे हैं कि अगर मैं कह दूं, हां, लिखी हुई है, तो आप जोर से फिर से छाती से लगा लें उस धर्मग्रंथ को कि बिल्कुल जब जिसमें अच्छी बात लिखी हुई है उसको कैसे छोड़ें? और अगर मैं कहूं कि नहीं, उसमें नहीं लिखी हुई है, तो आप कहेंगे, ऐसा हो ही कैसे सकता है कि किसी धर्मग्रंथ में बात न लिखी हुई हो? यह आदमी गड़बड़ कहता है, अपने धर्मग्रंथ को सम्हालो और घर जाओ। दोनों हालतों में आप उसको बचा लेना चाहते हैं।
एक बार ऐसा हुआ, जीसस क्राइस्ट एक गांव के बाहर ठहरे हुए थे। पुराने, ओल्ड टेस्टामेंट में, पुरानी बाइबिल में यह लिखा हुआ है कि अगर कोई व्यभिचार करे, तो उसे पत्थरों से मार कर मार डालना चाहिए। एक स्त्री ने व्यभिचार किया था। गांव के लोग उस स्त्री को पकड़ कर क्राइस्ट के पास ले आए, नदी के किनारे। उन्होंने कहा कि आज अच्छा मौका मिला है, आज क्राइस्ट से पूछेंगे कि इस स्त्री के साथ क्या करें? इसने व्यभिचार किया है। अगर क्राइस्ट कहेगा कि क्षमा कर दो इसे। क्योंकि क्राइस्ट कहते थे कि सबको क्षमा कर दोः जो तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, उसके सामने दूसरा गाल कर दो। और जो तुम्हारा कोट छीनने लगे उसको कमीज भी दे दो, हो सकता है उसको कमीज की भी जरूरत हो। और जो आदमी तुमसे कहे कि एक मील मेरा बोझ ले चलो, तो

तुम दो मील तक पहुंचा देना। जो आदमी यह कहता था, वह यह तो मान नहीं सकता कि पत्थर मार-मार कर एक औरत को मार डाला जाए। तो क्राइस्ट जरूर कहेगा कि माफ कर दो इसको, और अगर क्राइस्ट कहेगा माफ कर दो, तो हम किताब खोल कर रखेंगे। धर्मग्रंथ में लिखा हुआ है कि जो व्यभिचार करे उसे पत्थर मार-मार कर मार डालना चाहिए। तो क्या धर्मग्रंथ हमारा गलत है? अगर क्राइस्ट कहेगा, धर्मग्रंथ गलत है, तो इस स्त्री को तो पत्थर मारेंगे, उसको भी मारेंगे। क्योंकि धर्मग्रंथ कैसे गलत हो सकता है? सैकड़ों वर्षों से जिसको सैकड़ों लोगों ने माना है और पूजा है वह कैसे गलत हो सकता है? एक छोकरे के कहने से, उस वक्त ईसा की उम्र कोई बत्तीस-तैंतीस वर्ष थी, इसके कहने से कहीं कुछ गलत हो सकता है? और एक आवारा छोकरे के कहने से, जो भटकता रहता है गांव-गांव। और अगर क्राइस्ट ने कहा, धर्मग्रंथ ठीक कहता है, मार डालो, तो हम क्राइस्ट से पूछेंगे, कहां गए तुम्हारे प्रेम के संदेश? कहां गई अहिंसा? कहां गया तुम्हारा अप्रतिरोध? तुम तो कहते थेः रेसिस्ट नॉट ईविल, बुराई से लड़ो मत, तुम यह क्या कह रहे हो? हम दोनों हालतों में सींगों के बीच में फंसा लेंगे क्राइस्ट को और मजा देखेंगे। आज चलें।
वह सारा गांव पहुंच गया। वहां बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई। क्राइस्ट नदी के किनारे बैठे थे। वह रोती हुई स्त्री... लोग घसीटते हुए जाकर ईसा के सामने पटक दी। और उन्होंने कहाः यह धर्मग्रंथ है, इसमें लिखा है कि जो व्यभिचार करे उसे पत्थरों से मार डालो। क्राइस्ट दो क्षण चुप रहे। उन्होंने उस स्त्री को देखा और उन लोगों से कहाः आप लोग पत्थर ले आए हैं कि नहीं ले आए हैं? नदी का किनारा था, पत्थर ही पत्थर थे। क्राइस्ट ने कहाः पत्थर उठा लें। लोग बड़े हैरान हुए! उन्होंने पत्थर अपने हाथों में उठा लिए, और उन्होंने क्राइस्ट से कहाः क्या मार डालें इस स्त्री को? किताब में ऐसा लिखा हुआ है, क्या यह ठीक है? क्राइस्ट ने कहाः किताब में ठीक लिखा है, लेकिन पत्थर वही मारने का हकदार है जिसने कभी व्यभिचार न किया हो या व्यभिचार का विचार न किया हो। आ जाए वह आदमी सामने पहले, वह पहला पत्थर मारे।
उस भीड़ में लोग पीछे की तरफ होने लगे, जो आगे बैठे थे वे पीछे सरकने लगे। जो आगे खड़े थे वे पीछे जाने लगे। उस भीड़ में गड़बड़ हो गई। लोगों ने पत्थर धीरे से नीचे छोड़ दिए। कुछ लोग पीछे से खिसक कर भागे, क्योंकि गांव भर उनको जानता था कि वे कैसे लोग हैं।
असल में जो व्यभिचारी थे, वे ही व्यभिचारी स्त्री को पकड़ कर ले गए थे। कोई भला आदमी किसी को व्यभिचारी मानने का भी पाप नहीं करता है। धीरे-धीरे भीड़ छंट गई, वह औरत अकेली रह गई, और सांझ घिर गई, और क्राइस्ट अकेले रह गए। उस स्त्री ने कहा कि अब मैं क्या करूं? आप मुझे कोई दंड दें। क्राइस्ट ने कहा कि मैं कोई दंड देने वाला नहीं हूं। तुम समझो, तुम्हें अगर दिखाई पड़े कि जो गलत है, उसे छोड़ दो, वही दंड है। तुम्हें दिखाई पड़े, जो ठीक है, वही करती रहो। तुम अपनी मालिक हो। तुम्हारे और तुम्हारे परमात्मा के बीच मैं निर्णय लेने वाला कौन हूं? तू जा, तुझे जो ठीक लगे, जो तेरे प्राण कहें, जो तेरी अंतरात्मा कहे, वह कर, वही ठीक होगा।
वह औरत वापस लौट गई होगी। वे गांव के लोग वापस लौट गए। वे बड़े परेशान हुए, उन्होंने सोचा था कि कोई निर्णय हो जाएगा, वह निर्णय तो उलटा हो गया। आप पूछते हैं कि धर्मग्रंथ में जरूर कोई अच्छी बातें लिखी होंगी?
अगर वे अच्छी बातें लिखी हैं, तो वे आपकी जिंदगी में आ क्यों नहीं गईं?
वे अब तक मनुष्य की जिंदगी में उतर क्यों नहीं आईं?
उन्होंने पूछा है कि धर्मग्रंथों में लिखा हैः अनासक्ति योग, सम्यक-दर्शन, सम्यक-ज्ञान, यह सब लिखा हुआ है।
यह अच्छा नहीं है? यह आदमी की जिंदगी में आया क्यों नहीं? सवाल यह नहीं है कि कहां लिखा हुआ है, सवाल यह है कि आया क्यों नहीं? यह जिन्होंने पूछा है, उनकी जिंदगी में आया है यह? यह अनासक्ति आई? यह सम्यक-दर्शन आया? यह सम्यक-ज्ञान आया? यह कुछ भी नहीं आया। और यह नहीं आ सकता है, किताबों से शब्दों को जो पकड़ता है उसकी जिंदगी में कभी कुछ नहीं आ सकता है। जीवन से,

जीवन के यथार्थ से जो संपर्क साधता है, उसके जीवन में कुछ आना शुरू होता है।
तो हम जो जीवन में खोजें, तो अनासक्ति आ सकती है, क्योंकि जीवन का पूरा संदेश अनासक्ति का है। जीवन को जो देखेगा वह पाएगा कि आसक्ति के खड़े होने के लिए कोई जगह नहीं है। जीवन की धारा को जो देखेगा वह पाएगा कि यहां तो प्रतिपल अनासक्ति सब तरफ से घटित हो रही है। जो मित्र थे, वे विदा हो गए हैं; जो कल अपना था, वह अपना नहीं रहा है; कल बचपन था, आज जवानी आ गई है; कल जवानी थी, आज बुढ़ापा आ गया है। चीजें वहीं जा रही हैं, जहां किसी चीज पर कोई कब्जा नहीं है, जहां कोई चीज ठहरी हुई नहीं है। वहां आसक्ति नासमझी के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो सकती। जहां सारी चीजें सतत परिवर्तन में हैं, वहां किसी चीज को पकड़ कर नहीं रोका जा सकता, वहां पकड़ रखना पागलपन है। लेकिन यह जीवन दिखाई पड़े, यह जीवन में खोजा जाए, तब तो, तब तो कुछ होता है। लेकिन एक आदमी बैठा है और किताब में पढ़ रहा है, अनासक्ति योग और अनासक्ति की व्याख्या पढ़ रहा है और खोज रहा है शब्दकोश कि अनासक्ति का क्या अर्थ है? और अनासक्ति के क्या-क्या अर्थ हो सकते हैं? और क्या-क्या व्याख्याएं हो सकती हैं? वह पंडित होता चला जा रहा है, अनासक्ति का जानकार होता चला जा रहा है, जानकार होता चला जा रहा है। और अनासक्ति की कोई भी खबर उसको नहीं है।
एक फकीर था, वह फकीर निरंतर यह बात करता रहता कि सब परमात्मा का दिया हुआ है। सब परमात्मा का है। पड़ोस में कोई आदमी मर जाता, तो वह कहता कि परमात्मा ने भेजा था, परमात्मा ने ले लिया, क्यों रोते हो? उस फकीर के दो लड़के थे, उसकी पत्नी थी, दोनों जुड़वां लड़के थे, दोनों पड़े प्यारे, बड़े स्वस्थ लड़के थे। फकीर गांव में उपदेश करने जाता था, स्कूल में पढ़ाने जाता था, वे बच्चे आकर उसके पास खेला करते थे, एक दिन वह स्कूल में मस्जिद में पढ़ाने गया है, बच्चे नहीं आए, वह बड़ा चिंतित होकर बार-बार देखने लगा कि बच्चे नहीं आए? फिर वह दोपहर भोजन करने घर गया, उसने अपनी पत्नी से कहाः आज बच्चे मुझे दिखाई नहीं पड़े, वे कहां हैं? उसकी पत्नी ने कहाः वे विश्राम कर रहे हैं, आप तब तक भोजन कर लें। उसने कहाः इतनी दोपहर तक विश्राम कर रहे हैं? उसकी पत्नी ने कहा कि हां, वे विश्राम कर रहे हैं, खेलते-खेलते बहुत थक गए हैं, तो विश्राम कर रहे हैं, आप तब तक भोजन कर लें। वह भोजन करता गया, लेकिन रोज बच्चे उसके साथ ही भोजन करते थे, उसे बार-बार याद आने लगी। उसने कहाः बात क्या है? उन्होंने खाना खा लिया है क्या? उसने कहा कि नहीं, वे बिना खाना खाए खेलने चले गए, खेलते रहे और थक गए और सो गए। फिर वह भोजन कर लिया। उसने कहाः वे कहां सोए हुए हैं? वह बगल की कोठरी में ले गई। वहां दोनों बच्चे सो रहे हैं, चादर ओढ़ी हुई है, फकीर ने जाकर चादर उघाड़ी, वे दोनों बच्चे तो मर गए हैं। वे जिंदा नहीं हैं।
फकीर तो रोने लगा, चिल्लाने लगा कि यह क्या हुआ, तुमने बताया क्यों नहीं? पर उसने कहाः आप ही तो कहते थे, सभी परमात्मा से आता है, सभी परमात्मा में लौट जाता है। और आप ही तो कहते थे कि मृत्यु परम विश्राम है। तो मैंने कहा कि सो रहे हैं, विश्राम कर रहे हैं। इसमें मैंने कौन सी भूल कही? हमेशा को सो गए हैं। वह फकीर बोलाः पागल, ये समझाने की बातें थीं, यह मैं लोगों को समझाता था। मेरे प्राण को मत छेड़ो इन बातों को दोहरा-दोहरा कर, मेरे घाव पर नमक मत छिड़को। उसकी स्त्री कहने लगी, मैं घाव पर नमक नहीं छिड़क रही, मैं तो सोची... मैंने तो जिंदगी में देखा और पाई कि ठीक है यह बात, वह फकीर छाती पीट कर रोने लगा। उसे ख्याल भी न रहे वे उपदेश जो वह रोज किसी को देता था, रोज किसी को दे आता था। वह सब भूल गया। वे किताबों से लिए गए उपदेश थे। वह जिंदगी से ली गई शिक्षा न थी।
मेरा जोर है इस बात पर सिर्फ कि जीवन चारों तरफ जैसा है उसे देखें। उसे देखने से एक अनासक्ति पैदा होनी शुरू हो जाएगी। वह अनासक्ति और है। वह अनासक्ति योग नहीं है, वह अनासक्ति का प्रवचन नहीं है, वह अनासक्ति का दर्शन नहीं है, वह शुद्ध अनासक्ति की अनुभूति है, वह अनासक्ति है।
लेकिन दो दिशाएं हैं, एक आदमी शब्दों में खोज सकता है और खोजता रह सकता है और एक आदमी जीवन में खोज सकता है। और जीवन में जो खोजता है, वह

वास्तविक अनुभव के आधार पर खड़ा हो जाता है। और जो शब्दों में खोजता है, वह शब्दों में खोजता रह जाता है। शब्दों के खोजने वालों की अपनी दुनिया है। डेनियल वेबिस्टर का नाम आपने सुना हो, उसने अंग्रेजी की सबसे अच्छी डिक्शनरी लिखी। वह शब्दकोश का सबसे बड़ा ज्ञाता था। अंग्रेजी, अंग्रेजी शब्दों को उसने तीस साल मेहनत की। जवान था तभी से उसने मेहनत शुरू की, जब बूढ़ा हो गया तब उसका शब्दकोश पूरा हो गया। उसका शब्दकोश बहुमूल्य है। एक दिन सांझ को अंधेरे में उसकी पत्नी एकदम चौंक गई। उसकी पत्नी ने आकर देखा कि वह घर की नौकरानी को चूम रहा है। तो उसकी पत्नी ने कहा कि आई एम सरप्राइज्ड! वेबिस्टर ने कहा कि सरप्राइज्ड नहीं, सरप्राइज्ड नहीं, यह शब्द गलत है। तुम्हें यह नहीं कहना चाहिए कि मैं आश्चर्य से भर गई हूं, तुम्हें कहना चाहिए कि तुम अवाक रह गईं, आश्चर्य से तो मैं भर गया हूं। वह भाषा की भूल सुधार रहा है। उसकी पत्नी ने कहा कि मैं आश्चर्य से भर गई हूं, यह क्या कर रहे हैं? उसने कहा कि नहीं-नहीं, इतने दिन हो गए तुझे मेरे पास रहते, यह सवाल आश्चर्य भरने का नहीं है, तुझे कहना चाहिए मैं अवाक रह गई हूं। आश्चर्य से तो मैं भर गया हूं कि तू कहां से बीच में आ गई है? यह गलती शब्द है। मैंने कितनी दफा कहा कि यह शब्द गलत है। उसकी पत्नी ने कहा कि यह शब्द का निर्णय हम नहीं कर रहे हैं।
एक दिन वेबिस्टर का बच्चा, छोटा बच्चा गिर पड़ा सीढ़ियों से। उसकी दूसरी लड़की ने आकर उसको कहा कि छोटा बच्चा जो है, उसने आकर कहा, ही हैज फेल। तो गलत था, वह छोटी बच्ची थी वह जानती नहीं थी। वेबिस्टर ने कहा कि मूर्ख ऐसा नहीं कहना पड़ता, कहना पड़ता है, ही हैज फालेन। वह बच्चे को उठाने नहीं गया, वह इसका शब्द सुधार रहा है।
पाणिनी की तो बड़ी अदभुत कथा है। पाणिनी तो संस्कृत व्याकरण के पिता थे। वे जंगल में बैठ कर अपने बच्चों को पढ़ा रहे हैं, व्याकरण पढ़ा रहे हैं। जंगल में क्लास लगी है, दस-पंद्रह बच्चे बैठे हैं। और तभी लड़के चिल्लाने लगेः व्याघ्र! व्याघ्र! व्याघ्र आ गया है, व्याघ्र चला आ रहा है। पाणिनी ने देखा कि व्याघ्र आता है। पाणिनी कहने लगे, बच्चो, व्याघ्र की व्युत्पत्ति क्या है? व्याघ्र शब्द का अर्थ क्या है? जिसकी घ्राणेंद्रिय बहुत तेज होती है उसको व्याघ्र कहते हैं। और व्याघ्र ने उन पर हमला कर दिया और वे समझा रहे हैं कि जिसकी घ्राणेंद्रिय तेज होती है उसको व्याघ्र कहते हैं, व्याघ्र यानी जिसकी घ्राणेंद्रिय तेज होती है। वह व्याघ्र उनको खा गया। व्याघ्र जो आ गया है हमला करता, वह उतना वास्तविक नहीं है, पाणिनी को जितना व्याघ्र शब्द वास्तविक है।
शब्दों के पकड़ वाले लोग हैं। शब्दों के बीमार लोग हैं, वे शब्दों को पकड़ कर उनकी व्याख्या करते रहते हैं। शब्दों को पकड़ कर उनकी बाल की खाल निकालते रहते हैं और सोचते हैं बड़ी संपदा खोज रहे हैं। शब्दों में कुछ भी नहीं है। शब्द तो प्याज की भांति हैं, छीलते जाओ, छीलते जाओ, छीलते जाओ। भीतर शून्य हाथ में पड़ता है और कुछ भी नहीं। छीलो तो लगता है कि आगे फिर कुछ आया, और छीलो तो लगता है कि और कुछ आया, छीलते जाओ, छीलते जाओ, छिलके और छिलके और छिलके और फिर पीछे नकार हाथ में लगता है, कुछ भी मिलता नहीं। शब्दों को छीलने वाले लोग समझते हैं कि बड़ी श्रम कर रहे हैं, ब.ड़ी कोई जीवन की सच्चाई खोज रहे हैं। शब्दों में कुछ भी नहीं है। जीवन वहां है जहां निशब्द होकर कोई खोजता है। और शास्त्र वहां है जहां शब्दों के जोड़ हैं। जीवन वहां है जहां निःशब्द अनुभव है, जहां साइलेंट एक्सपीरियंस है, जहां मौन है, जहां सब तरफ से मन चुप और मौन होकर जीवन का साक्षात करता है, वहां उपलब्ध होती हैं अनुभूतियां।
जरूर अनासक्ति आती है, लेकिन साधी नहीं जाती। जरूर जीवन के अनुभव से अनासक्ति उपलब्ध होती है, लेकिन उसको साधना नहीं पड़ता। उसको कल्टीवेट नहीं करना पड़ता। जरूर जीवन के अनुभव से त्याग आता है, लेकिन उस त्याग की चेष्ठा नहीं करनी पड़ती। शास्त्रों को सीख कर अगर त्याग आएगा, तो त्याग जबरदस्ती होगा। अगर शास्त्रों से सीख कर अनासक्ति आएगी, तो अनासक्ति जबरदस्ती होगी, झूठी होगी, थोपी हुई होगी। शास्त्रों में लिखी है अनासक्ति और त्याग, सब लिखा हुआ है, लेकिन उससे सीख कर जिसके जीवन में

अनासक्ति लाने की चेष्टा होगी, वह चेष्टा बिल्कुल झूठी होगी, और जबरदस्ती होगी, अभिनय होगा, पाखंड होगा, हिप्पोक्रेसी होगी और कुछ भी नहीं होगा। वह सब छोड़ कर खड़ा हो जाएगा, नग्न हो जाएगा, भूखा रहने लगेगा, तपस्वी हो जाएगा, लेकिन उसके भीतर कोई फर्क नहीं होगा। क्योंकि जीवन के अनुभव से वह बात नहीं आई है।
एक घटना मुझे बहुत प्रीतिकर रही है। महाराष्ट्र में ही घटी। रांका नाम का एक साधु हुआ। वह साधु-पुरुष था; वह था, उसकी पत्नी थी। दोनों वृद्ध थे। जंगल से लकड़ियां काट लाते, बेचते थे, जो मिल जाता उससे भोजन कर लेते, सांझ जो बचता उसे बांट देते। यही क्रम था; न किसी से भीख मांगते, न किसी पर निर्भर थे। रात सब तरह से संपत्तिहीन, अपरिग्रही होकर सो जाते। सुबह फिर लकड़ियां काट लाते, फिर बेचते, सांझ तक कमा कर लाते चार पैसे, भोजन बनाते, खा लेते, जो बचता उसे बांट देते। फिर रात संपदा-शून्य होकर सो जाते। यही उनकी साधना थी। लेकिन एक दिन बे-मौसम ही पानी गिरता रहा। जब मौसम में पानी गिरता था तब तो वे बहुत लकड़ियां काट कर इकट्ठी रख लेते थे। उन्हें बेच-बेच कर काम चला लेते थे। लेकिन अचानक पानी आ गया और चार-पांच दिन तक पानी की धार लगी रही, तो वे लकड़ियां काटने नहीं जा सके। तो पांच दिन उन्हें भूखा ही रहना पड़ा। किसी को पता भी न था, वे अपने झोपड़े में बैठे रहे भूखे। फिर बरसात बंद हुई, सूरज निकला, तो वे छठवें दिन लकड़ी काटने जंगल की तरफ गए। पांच दिन के भूखे, कमजोर, बूढ़े, वह और उसकी पत्नी दोनों गए। लकड़ियां काट कर, मोलियां बना कर... रांका आगे-आगे, उसके पति का नाम रांका और उसकी पत्नी का नाम बांका, और पीछे-पीछे लकड़ियां वे दोनों लेकर चले। रांका आगे- आगे है, पत्नी थक गई है, वह पीछे थोड़ी दूर चल रही है। रास्ते के किनारे, जंगल के रास्ते पर, वह पगडंडी पर किसी राही की मालूम होता है कोई थैली गिर गई है। और थैली से कुछ अशर्फियां बाहर पड़ गई हैं, कुछ थैली के भीतर हैं। रांका को ख्याल हुआ, मैं तो जीत लिया हूं स्वर्ण को, मैं तो संपत्ति का त्यागी हूं, मेरा त्याग तो पूर्ण हो चुका है, लेकिन मेरी पत्नी का क्या भरोसा?
पुरुषों को स्त्रियों का कभी भरोसा रहा ही नहीं। और पति को तो पत्नी
का भरोसा कभी होता ही नहीं। क्या भरोसा, उसका मन न डोल जाए, इतनी स्वर्ण-अशर्फियां देख कर उसके मन में यह न हो जाए कि उठा लें, क्या हर्ज है! नहीं भी उठाया और मन डोल गया, तो पाप तो हो ही जाएगा। बंधन तो हो ही जाएगा। नरक में सड़ेगी पीछे।
उसने जल्दी से उसको, थैली को सरका दिया गड्ढे में, मिट्टी ढांक दी। ढांक कर उठने को ही था कि उसकी पत्नी भी आ गई। उसकी पत्नी ने पूछा कि क्या करते हैं आप? क्या कर रहे हैं? क्या ढांक रहे हैं?
अब बड़ी मुश्किल हो गई, उसका नियम था कि झूठ नहीं बोलेगा। नियम वालों
के साथ बड़ी मुश्किल हो जाती है। उसका नियम था कि झूठ नहीं बोलेगा। सच ही बोलना है। अब कठिनाई में पड़ गया। मजबूरी थी, कहना पड़ा कि यहां से निकला था तो अशर्फियां पड़ी हुई दिखाई पड़ीं, मेरे मन को हुआ कि मैं तो स्वर्ण का विजेता हूं, मेरे लिए तो सोना ना-कुछ है, लेकिन कहीं तेरा मन न डोल जाए, इसीलिए मैंने अशर्फियां ढांक दी हैं गड्ढे में और मिट्टी ढांक दी, ताकि तुझे दिखाई न पड़े। चलो घर चलें अब रुकने की यहां कोई जरूरत नहीं है। उसकी पत्नी खूब हंसने लगी, और उसकी पत्नी ने कहाः मैं बड़ी हैरान हूं, मैं बड़ी चकित हो गई हूं, तुम्हें अब तक स्वर्ण दिखाई पड़ता है? तुम्हें सोना दिखाई पड़ता है? मैं बड़ी हैरान हो गई हूं, उसकी पत्नी कहने लगी। उसकी हंसी खो गई और उसकी आंखों में आंसू आ गए। वह कहने लगी कि मैं बड़ी हैरान हूं, तुम मिट्टी पर बैठ कर मिट्टी डालते हो! तुम मिट्टी को मिट्टी में छिपाते हो! तुम्हें सोना अब भी दिखाई पड़ता है?
ये दो बातें हो गईं, एक जिसे सोना दिखाई पड़ता है, लेकिन जिसने शास्त्रों में पढ़ कर सोना छोड़ दिया है, त्याग कर दिया है सोने का, लेकिन सोने से मुक्ति नहीं हुई। सोने के त्याग से सोने से मुक्ति नहीं होती। सोने के व्यर्थ होने के दर्शन से, सोने के त्याग से नहीं। सोने के व्यर्थता के बोध से। सोने के व्यर्थ होने के अनुभव से जो त्याग फलित होता

है, वह मुक्ति लाता है। और सोना छोड़ना चाहिए, छोड़ना चाहिए, छोड़ना चाहिए, बुरा है, ये कामिनी और कांचन बुरे हैं, ऐसे साधु सुबह से सांझ तक समझाते हैं। कामिनी बुरी, कांचन बुरा, छोड़ो, छोड़ो, छोड़ो। कुछ बेचारे उनकी बातों में पड़ जाते हैं। वे छोड़ कर भाग खड़े होते हैं। फिर जिंदगी भर उनको कामिनी और कांचन ही दिखाई पड़ते रहते हैं। फिर जहां भी वे जाएंगे, उनको दो ही चीजें उनको दिखाई पड़ेंगी, कामिनी और कांचन। जिसको छोड़ कर आदमी भागता है, वही फिर उसको जीवन भर पीछा करता है। वह बेचारे रांका का पीछा सोना कर रहा था।
मैं आपसे कहता हूं कि अगर उसे दिखाई न पड़ा होता, तो उसकी पत्नी को तो बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ सकता था। ठीक बहुत मिट्टी पड़ी थी, सोना भी पड़ा था, उस पड़े होने में कहां भेद आता था? अगर सोना व्यर्थ दिखाई पड़ गया हो! लेकिन व्यर्थ दिखाई नहीं पड़ा है, वह सार्थक मालूम हो रहा है। जो आदमी सोने को तिजोरी में इकट्ठा करता है, वह भी सोने का पूजक है, और जो आदमी सोने को छोड़ कर भागता है, वह भी सोने का पूजक है। वे दोनों सोने को मानते हैं। सोना उनका भगवान है।
मैं जयपुर में था, मेरे एक मित्र ने आकर कहा कि आप फलां-फलां मुनि के पास नहीं चलेंगे? वे बहुत बड़े मुनि हैं। मैंने कहाः तुम्हें कैसे पता चला कि वे बड़े मुनि हैं? कैसे तुमने जाना कि वे बड़े मुनि हैं? उसने कहाः इसमें जानने की क्या बात है, खुद जयपुर महाराज उनके चरण छूते हैं। मैंने कहाः जयपुर महाराज होंगे बड़े तुम्हारे लिए, मुनि का बड़प्पन इससे कैसे पता चलता है? तुम जयपुर महाराज को बड़ा मानते हो, तो जयपुर महाराज जिस मुनि के पैर छूते हैं वह भी बड़ा मालूम होता है। तुम जयपुर महाराज के पूजक हो, मुनि से तुम्हें कुछ लेना-देना नहीं। अगर जयपुर महाराज मुनि के पास न जाएं तो? तो मुनि दो कौड़ी के हो जाएंगे। तुम्हारा असली मूल्य जयपुर महाराज का है, मुनि का नहीं। अगर महावीर गरीब घर में पैदा हुए होते, तो मैं आपसे कहे देता हूं, आपमें से एक उनको तीर्थंकर मानने को तैयार नहीं होता। आपको महावीर से रत्ती भर मतलब नहीं है। आपको मतलब है महावीर ने कितना धन छोड़ा है, कितनी मोहरें, कितने महल, कितना राज्य, उसका हिसाब लगा कर बैठे हैं आप अपने पुराणों में कि कितना-कितना छोड़ा उन्होंने। वह जितना छोड़ा, वहीं महावीर का मूल्य है आपकी दृष्टि में।
आपको पता है जैनियों के चौबीस तीर्थंकर में एक भी गरीब घर का लड़का नहीं है। सब राजपुत्र हैं। बुद्ध के चौबीस अवतारों में एक भी गरीब घर का लड़का नहीं है। सब राजपुत्र हैं। कृष्ण राजा के लड़के, राम राजा के लड़के, चौबीस जैनियों के तीर्थंकर राजा के लड़के। बौद्धों के चौबीस बुद्ध राजाओं के लड़के। क्या गरीब के घर में कभी कोई ज्ञान उत्पन्न होता ही नहीं? क्या अमीरी ज्ञान की भी मालकियत है? क्या अमीरी की वह भी बपौती है। नहीं, लेकिन त्याग दिखाई नहीं पड़ता, जब तक धन छोड़ने को भी पास में न हो।
अगर एक गरीब घर का लड़का कहे कि मैं सब छोड़ कर निकल आया हूं, आप हंसेंगे
कि पागल हो गया, तुम्हारे पास छोड़ने को था क्या जो तुम छोड़ कर निकल आए हो? त्याग की हम बातें करते हैं, लेकिन बेसिक वैल्यू हमारे मन में धन की है। कितना धन छोड़ते हैं, उससे हम त्याग को नापते हैं। धन हो तो त्याग होता है, धन न हो तो त्याग नहीं होता है। तो बड़ी मुश्किल है। इसलिए तो जो त्यागी पुरुष हैं, पहले धन इकट्ठा करते हैं, फिर धन का त्याग करते हैं। नहीं तो मोक्ष, मोक्ष जाने का उपाय नहीं है। पहले धन इकट्ठा करो, फिर मंदिर बनाओ और दान करो। इधर शोषण करो, इधर दान करो, तो मोक्ष जा सकते हो--कि बिना दान के कोई मोक्ष नहीं जा सकता। और बिना धन के दान नहीं होता। और बिना शोषण के धन इकट्ठा नहीं होता। तो पहले पाप करो कि धन इकट्ठा हो, फिर दान करो कि पुण्य हो जाए।
यह जो सारी प्रक्रिया है, ये हमारे मूल्य, हमारी वैल्यूज, हम किताबों
से सीखते हैं इसलिए खड़ी हो जाती हैं। हमने किताबों से दान सीख लिया है, त्याग सीख लिया है, अनासक्ति सीख ली है। और उसके बड़े बेहुदे परिणाम निकलने शुरू होते हैं। आदमी न तो त्यागी हो पाता है, न आदमी दानी हो पाता है, न आदमी अनासक्त हो पाता है। लेकिन ओढ़ लेता है चीजों को अपने ऊपर। ओढ़ कर खड़ा

हो जाता है, और इस ओढ़े हुए वेश को, इस ओढ़े हुए व्यक्तित्व को, इस फॉल्स पर्सनैलिटी को, इस मिथ्या जीवन को वह समझता है कि साधना हो गई।
साधना जीवन से आती है, शब्दों से नहीं। साधना जीवन के वृहत्तर अनुभवों से आती है। जीवन के अहसास से आती है, जीवन के रोज-रोज की जो रिलेशनशिप है, जीवन के जो अंतर्संबंध हैं, उनसे आती है। अनासक्ति भी आती है, ज्ञान भी, दर्शन भी, चरित्र भी, लेकिन शब्दों से नहीं। वे बैठे हैं और रट रहे हैं कि सम्यक दर्शन और सम्यक ज्ञान, सम्यक चरित्र, ये मोक्ष के मार्ग हैं, तोतों की तरह रट रहे हैं रोज सुबह से, रोज रट रहे हैं। रटते रहिए, कुछ भी होने की जरूरत नहीं है।े कुछ होने का सवाल है। होगा, होगा वह इन शब्दों के दोहराने से नहीं, प्रत्यक्ष जीवन के साक्षात से। वहां से कुछ दिखाई पड़ेगा, तो जरूर हो सकता है।

एक मित्र ने और पूछा है, अंतिम प्रश्न, फिर मैं अपनी बात पूरी करूंगा। उन्होंने पूछा है कि अगर हम धर्मग्रंथों से न सीखें, तब तो दुनिया से धर्म का लोप हो जाएगा?

शायद उनको यह ख्याल है कि धर्मग्रंथों के कारण धर्म है। धर्म के कारण धर्मग्रंथ हो सकते हैं, लेकिन धर्मग्रंथों के कारण धर्म नहीं है।
न्यूटन ने ग्रेविटेशन का सिद्धांत निकाला और एक किताब लिखी, जिसमें ग्रेविटेशन का सिद्धांत लिखा कि जमीन में गुरुत्वाकर्षण है। अब अगर कोई कहने लगे कि अगर गुरुत्वाकर्षण की किताब खो जाएगी तो फिर गुरुत्वाकर्षण का क्या होगा? गुरुत्वाकर्षण की किताब कितनी ही बार खो जाए, गुरुत्वाकर्षण को पता भी नहीं चलेगा कि न्यूटन की किताब खो गई कि नहीं खो गई? न्यूटन नहीं था, तब भी ग्रेविटेशन था। दुनिया में किसी को पता नहीं था कि जमीन चीजों को अपनी तरफ खींचती है। तब भी जमीन चीजों को अपनी तरफ खींचती थी। न्यूटन को जो पता चला वह ग्रेविटेशन के अनुभव से पता चला। अनुभव उसने अपनी किताब में लिख दिया। किताब के नष्ट होने से और छोड़ देने से ग्रेविटेशन नष्ट नहीं होता। धर्मग्रंथ धर्म के अनुभव से पैदा होते हैं, लेकिन धर्मग्रंथों को पकड़ लेने से धर्म-अनुभव पैदा नहीं होता। और न ही धर्मग्रंथों के छोड़ने से धर्म छूटता है। धर्मग्रंथ कितने ही बढ़ जाएं, उससे धर्म बढ़ता भी नहीं है। घर-घर में हो जाएं धर्मग्रंथ, तो धर्मग्रंथों के हो जाने से धर्म बढ़ जाएगा? घर-घर में उन पर धूल जम रही है।
मैंने सुना है, सुबह-सुबह एक घर में एक आदमी--उस घर में मैं भी मेहमान था--एक आदमी कुछ किताबें बेचने आ गया। वह कुछ शब्दकोश बेच रहा था। और घर की गृहिणी को जोर से कहने लगा कि शब्दकोश आप जरूर खरीद लें, यह बहुत ही अच्छा है, बच्चों के बहुत काम पड़ेगा। लेकिन गृहिणी टालने पर तुली थी कि नहीं मुझे खरीदना नहीं है। फिर जब कोई दलील न चली, तो उसने कहा कि देखते नहीं वह टेबल पर हमारे यहां शब्दकोश रखा हुआ है, हमें कोई जरूरत नहीं है।
वह आदमी हंसने लगा और उसने कहाः मुझे धोखा मत दें, वह शब्दकोश नहीं है,
वह धर्मग्रंथ है।
वह गृहिणी तो बहुत हैरान हो गई, उसने कहा कि तुम कैसे पहचान गए कि वह धर्मग्रंथ है? उसने कहाः उस पर जमी हुई धूल से सब पता चल जाता है कि वह क्या है? उस पर इतनी धूल जमी है कि उसको कोई उठाता नहीं है, यह पता चल रहा है कि वह धर्मग्रंथ है। अगर और कोई किताब होती तो कोई न कोई उठाता, इतनी धूल नहीं जम सकती थी।
धर्मगं्रथों पर धूल जमती जाती है। उससे कुछ फर्क पड़ता नहीं। और हम जब
तक सोचते हैं कि उसी से धर्म मिलेगा, तब तक हमारे जीवन पर भी धूल जमती जाएगी, और हमारे जीवन पर भी कुछ फर्क नहीं हो सकता।
महावीर कौन सा धर्मग्रंथ लेकर जंगल में गए थे, पता है? कोई बता सकता है नाम उस धर्मग्रंथ का जिसको महावीर लेकर जंगल में गए थे? आपसे नासमझ रहे मालूम होता है। बुद्ध पहाड़ पर थे, तो कौन सा धर्मग्रंथ लेकर गए थे? जिसस क्राइस्ट सिनाई के पर्वत पर गए थे, तो कौन सा धर्मग्रंथ उनके साथ था? मोहम्मद कौन सा धर्मग्रंथ लेकर साथ गया था? दुनिया में आज तक जिन लोगों ने

सत्य का अनुभव पाया है, वे कौन से धर्मग्रंथ लेकर तनहाई में गए थे, लोनलीनेस में गए थे, एकांत में गए थे?
कोई कुछ लेकर नहीं गया था, अकेले गए थे। सब पीछे छोड़ गए थे। और वहां जाकर इतने अकेले हो गए थे कि किसी की कोई याद भी न रह जाए, कोई शब्द न रह जाए, कोई स्मृति न रह जाए। कोई ज्ञान न रह जाए। इतने शांत और मौन जब कोई हो जाता है, तब सारे धर्म का रहस्य उसके समक्ष प्रकट हो जाता है। तब जीवन अपनी सारी मिस्ट्रीज, अपने सारे रहस्य उसके सामने खोल देता है। और तब, तब वह जानता है, तब वह धर्म को उपलब्ध होता है। तब उसके जीवन में आती है वह घटना, वह क्रांति, वह रूपांतरण, जो उसे एक सामान्य मनुष्य से असामान्य व्यक्तित्व दे देती है। जो उसे एक बुझे हुए दीये से जला हुआ दीया बना देती है। जो उसे एक कुम्हलाए हुए फूल से एक खिलता हुआ और सुगंधित फूल बना देती है। जो उसके सारे जीवन को आलोक से, अमृत से और सौंदर्य से भर देती है। किताबों से नहीं होगा यह, किताबों को पढ़-पढ़ कर केवल, केवल मस्तिष्क, केवल स्मृति शब्दों के बोझ से दब जाएगी। लेकिन ज्ञान का जन्म नहीं हो सकता है।
ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। और बहुत से प्रश्न रह गए हैं, प्रश्नों
का तो कोई अंत नहीं है। मैं सारे प्रश्नों के उत्तर दूं, इसकी कोई जरूरत भी नहीं है। जरूरत तो केवल इस बात की है कि मैं आपको उस दिशा को इंगित कर दूं जिस दिशा में प्रश्नों के उत्तर खोजे जा सकते हैं।
तो मैंने थोड़े से लाक्षणिक प्रश्न आपके चुन लिए और उनकी मैंने चर्चा की, ताकि आपको ख्याल हो सके कि मैं किस दिशा में सोचता हूं। किस दिशा में चिंतन चले, तो प्रश्नों की ठीक-ठीक पकड़ आ सकती है और उत्तर उपलब्ध हो सकते हैं। मैं तो कौन हूं उनका उत्तर देने वाला, उत्तर तो आपको ही खोज लेने हैं। लेकिन उत्तर कैसे खोजे जा सकते हैं या और ठीक हो कहना कि मैं किसी उत्तर को कैसे खेजता हूं अपने लिए, उस प्रक्रिया के संबंध में ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं।
मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

अमृत द्वार
पांचवां प्रवचन

दुख नहीं, आनंद

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक छोटी सी कहानी से मैं आज की चर्चा करना चाहूंगा।
एक निर्जन मार्ग पर एक नया मंदिर बन रहा था, उस मार्ग से जाता हुआ एक यात्री उस नव-निर्मित मंदिर को देखने के लिए रुक गया। अनेक मजदूर काम कर रहे थे। अनेक कारीगर काम कर रहे थे। न मालूम कितने पत्थर तोड़े जा रहे थे। एक पत्थर तोड़ने वाले मजदूर के पास वह यात्री रुका और उसने पूछा कि मेरे मित्र, तुम क्या कर रहे हो? उस पत्थर तोड़ते मजदूर ने क्रोध से अपने हथौड़े को रोका और उस यात्री की तरफ देखा और कहाः क्या अंधे हो! दिखाई नहीं पड़ता? मैं पत्थर तोड़ रहा हूं। और वह वापस अपना पत्थर तोड़ने लगा। वह यात्री आगे बढ़ा और उसने एक दूसरे मजदूर को भी पूछा जो पत्थर तोड़ रहा था। उससे भी पूछा कि मित्र, क्या कर रहे हो? उस आदमी ने अत्यंत उदासी से आंखें ऊपर उठाईं और कहाः कुछ नहीं कर रहा, रोटी-रोजी कमा रहा हूं। वह वापस फिर अपना पत्थर तोड़ने लगा। वह यात्री और आगे बढ़ा और मंदिर की सीढ़ियों के पास पत्थर तोड़ते तीसरे मजदूर से उसने पूछाः मित्र क्या कर रहे हो? वह आदमी एक गीत गुनगुना रहा था और पत्थर भी तोड़ रहा था। उसने आंखें ऊपर उठाईं, उसकी आंखों में बड़ी खुशी थी। और वह बड़े आनंद के भाव से बोलाः मैं भगवान का मंदिर बना रहा हूं। फिर वह गीत गुनगुनाने लगा और पत्थर तोड़ने लगा।
वह यात्री चकित खड़ा हो गया और उसने कहा कि तीनों लोग पत्थर तोड़ रहे हैं। लेकिन पहला आदमी क्रोध से कहता है कि मैं पत्थर तोड़ रहा हूं, आप अंधे हैं, दिखाई नहीं पड़ता? दूसरा आदमी भी पत्थर तोड़ रहा है, लेकिन वह उदासी से कहता है कि मैं रोटी-रोजी कमा रहा हूं। तीसरा आदमी भी पत्थर तोड़ रहा था, लेकिन वह कहता है, आनंद से गीत गाते हुए कि मैं भगवान का मंदिर बना रहा हूं।
ये जो तीन मजदूर थे, उस मंदिर को बनाते हैं। करीब-करीब हम भी इन तीन तरह के लोग हैं जो जीवन के मंदिर को निर्मित करते हैं। हम सभी जीवन के मंदिर को निर्मित करते हैं, लेकिन कोई जीवन के मंदिर को निर्मित करते समय क्रोध में भरा रहता है, क्योंकि वह पत्थर तोड़ रहा है। कोई उदासी से भरा रहता है, क्योंकि वह केवल रोटी-रोजी कमा रहा है। लेकिन कोई आनंद से भर जाता है, क्योंकि वह परमात्मा का मंदिर बना रहा है।
जीवन को हम जैसा देखते हैं, जीवन को देखने की हमारी जो चित्त-दशा होती है, वह जीवन की हमारी अनुभूति भी बन जाती है। जीवन को देखने की हमारी जो भाव-दृष्टि होती है वही हमारे जीवन का अनुभव, जीवन की प्रतीति और जीवन का साक्षात्कार भी बन जाती है। पत्थर तोड़ते हुए से भगवान का मंदिर बनाने की जिसकी दृष्टि है, वह आनंद से भर जाएगा। और हो सकता है कि पत्थर तोड़ते-तोड़ते उसे भगवान का मिलन भी हो जाए। क्योंकि उतनी आनंद की मनःस्थिति पत्थर में भी भगवान को खोज लेती है। आनंद के अतिरिक्त परमात्मा के निकट पहुंचने का और कोई द्वार नहीं है। लेकिन जो क्रोध और पीड़ा में काम कर रहा हो, उसे भगवान की मूर्ति में भी सिवाय पत्थर के और कुछ भी नहीं मिल सकता है। क्रोध की दृष्टि पत्थर के अतिरिक्त कुछ भी उपलब्ध नहीं कर पाती है। जो उदास है, जो दुखी है, वह अपनी उदासी और दुख को ही पूरे जीवन में फैला हुआ देख ले तो आश्चर्य नहीं है। हम वही अनुभव करते हैं जो हम होते हैं। हम वही देख लेते हैं जो हमारी देखने की दृष्टि होती है, जो हमारा अंतर्भाव होता है।
दो सूत्रों के संबंध में मैंने कल और उससे पहले आपसे बात की है। पहला सूत्र था जीवन-क्रांति के लिए, परमात्मा की दिशा में आंखें उठाने के लिए-- पहला सूत्र थाः विश्वास नहीं, विचार। दूसरा सूत्र थाः ज्ञान नहीं, विस्मय।
और तीसरा सूत्र हैः दुख नहीं, आनंद।
हम सारे लोग जीवन को दुख और पीड़ा से ही देखते हैं, और हजारों वर्षों की शिक्षाओं ने, गलत शिक्षाओं ने जीवन को आनंद के भाव से देखने की हमारी

क्षमता ही नष्ट कर दी है। जीवन को हम, वे लोग जो अपने को धार्मिक समझते हैं, जीवन को असार, व्यर्थ, दुख भरा, ऐसा देखने के आदी हो गए हैं। न मालूम किस दुर्भाग्य के क्षण में मनुष्य-जाति के ऊपर यह कालिमा आ पड़ी! न मालूम किस दुर्भाग्य के क्षण में मनुष्य-जाति को यह ख्याल पैदा हो गया कि परमात्मा और जीवन में कोई विरोध है! तो परमात्मा की तरफ केवल वे ही जा सकते हैं जो जीवन को बुरा, असार, दीन-हीन; घृणित... कंडेमनेशन जो जीवन का करें वे ही केवल परमात्मा की ओर जा सकते हैं। इस दृष्टि ने सारी मनुष्य-जाति के चित्त को अंधकार और पीड़ा से भर दिया है। इस दृष्टि ने फिर परमात्मा को खोजने की दिशा ही बंद कर दी, द्वार ही बंद कर दिए। क्योंकि उसे जानने के लिए आनंद से थिरकता हुआ हृदय चाहिए, गीत गाती हुई श्वासें चाहिए, नृत्य करता हुआ चित्त चाहिए, तो ही हम उसके अनुभव को उपलब्ध हो सकते हैं। क्योंकि हम अगर आनंद को उपलब्ध होना चाहते हैं, तो आनंद के अतिरिक्त आनंद तक पहुंचने का कोई मार्ग नहीं हो सकता।
एक छोटे से गांव में सुबह ही सुबह एक बैलगाड़ी आकर रुकी। और उस बैलगाड़ी
के मालिक ने उस गांव के दरवाजे पर बैठे हुए एक बूढ़े आदमी को पूछाः ऐ बूढ़े, इस गांव के लोग कैसे हैं? मैं इस गांव में स्थायी रूप से निवास करना चाहता हूं। क्या तुम बता सकोगे, गांव के लोग कैसे हैं? उस बूढ़े ने उस गाड़ी वाले को नीचे से ऊपर तक देखा। उसकी आवाज को ख्याल किया, उसने आते ही कहाः ऐ बूढ़े! वृद्धजनों से यह बोलने का कैसा ढंग है? फिर उस बूढ़े ने उससे पूछा कि मेरे बेटे, इसके पहले कि मैं तुझे बताऊं कि इस गांव के लोग कैसे हैं, मैं यह जान लेना चाहूंगा कि उस गांव के लोग कैसे थे, जिसे तू छोड़ कर आ रहा है? क्योंकि उस गांव के लोगों के संबंध में जब तक मुझे पता न चल जाए तब तक इस गांव के संबंध में कुछ भी कहना संभव नहीं। उस आदमी ने कहाः उस गांव के लोगों की याद भी मत दिलाओ, मेरी आंखों में खून उतर आता है। उस गांव जैसे दुष्ट, उस गांव जैसे पापी, उस गांव जैसे बुरे लोग जमीन पर कहीं भी नहीं हैं। उन दुष्टों के कारण ही तो मुझे वह गांव छोड़ना पड़ा है। और किसी दिन अगर मैं ताकत इकट्ठी कर सका तो उस गांव के लोगों को मजा चखाऊंगा। उस गांव के लोगों की बात भी मत छेड़ो। उस बूढ़े ने कहाः मेरे बेटे, तू अपनी बैलगाड़ी आगे बढ़ा ले। मैं सत्तर साल से इस गांव में रहता हूं, मैं तुझे विश्वास दिलाता हूं, इस गांव के लोग उस गांव के लोगों से भी बुरे हैं। मैं अनुभव से कहता हूं, इस गांव के लोगों जैसे बुरे आदमी तो कहीं भी नहीं हैं। अगर तू यहां रहेगा, तो पाएगा कि उस गांव के लोग इतने बुरे नहीं थे, यह गांव और भी बदतर है। तू आगे बढ़ जा। तू कोई और गांव खोज ले। जब उसने बैलगाड़ी बढ़ा ली तो उस बूढ़े ने कहाः और मैं जाते वक्त तुझसे यह भी कहे देता हूं कि इस पृथ्वी पर कोई भी गांव तुझे नहीं मिल सकता जिस गांव में उस गांव के लोगों से बुरे लोग न हों। लेकिन वह आदमी तो जा चुका था।
वह गया भी नहीं था कि एक घुड़सवार आकर रुक गया और उसने पूछा कि इस गांव
के लोग कैसे है? मैं भी इस गांव में ठहर जाना चाहता हूं। उस बूढ़े ने कहाः बड़े आश्चर्य की बात है! अभी-अभी एक आदमी यही पूछ कर गया है। लेकिन मैं तुमसे भी पूछना चाहूंगा कि उस गांव के लोग कैसे थे, जहां से तुम छोड़ कर आए हो? उस घुड़सवार की आंखों में कोई जैसे रोशनी आ गई। उसके प्राणों में जैसे कोई गीत दौड़ गया। जैसे किसी सुगंध से उसकी श्वासें भर गईं। और उसने कहाः उस गांव के लोगों की याद भी मुझे खुशी के आंसुओं से भर देती है, इतने प्यारे लोग! पता नहीं, किस दुर्भाग्य के कारण मुझे वह गांव छोड़ना पड़ा। अगर कभी सुख के दिन वापस लौटेंगे, तो मैं वापस लौट जाऊंगा उसी गांव में, वही गांव मेरी कब्र बने, यही मेरी कामना रहेगी। उस गांव के लोग बड़े भले थे। इस गांव के लोग कैसे हैं? उस बूढ़े ने उस जवान आदमी को घोड़े से हाथ पकड़ कर नीचे उतार लिया, उसे गले लगा लिया और कहाः आओ, हम तुम्हारा स्वागत करते हैं। इस गांव के लोगों को मैं भलीभांति जानता हूं। सत्तर साल से जानता हूं। इस गांव के लोगों को तुम उस गांव के लोगों से बहुत भला पाओगे। ऐसे भले लोग कहीं भी नहीं हैं।

आदमी जैसा होता है, पूरा गांव वैसा ही उसे दिखाई पड़ता है। आदमी जैसा होता है, पूरा जीवन उसे वैसा ही प्रतीत होता है। आदमी जैसा होता है, संसार उसे वैसा ही मालूम होने लगता है।
जो लोग भीतर दुख से भरे हैं और जिनकी जीवन-दृष्टि अंधेरी है, वे लोग कहते हैं कि जीवन दुख है, जीवन असार है, जीवन माया है। ये घोषणाएं धार्मिक आदमी की घोषणाएं--ये मानसिक रूप से बीमार, रुग्ण और अस्वस्थ लोगों की घोषणा है। नहीं, ये उन लोगों की घोषणाएं हैं--जीवन की निंदा की, जीवन की कुरूपता की, जीवन की पीड़ा की घोषणाएं उन लोगों की घोषणाएं हैं जिन्होंने आनंद के भाव को खो दिया है। जीवन को देखने की जिनकी क्षमता खो गई है। जो उनके भीतर है वही वे पूरे जीवन पर फैला कर देख सकते हैं। जो उन्हें दिखाई पड़ रहा है वह उनके अंतर्भाव का ही प्रोजेक्शन है, वह उनका ही प्रक्षेपण है। लेकिन इन लोगों ने पिछले तीन हजार वर्षों तक धर्म को दिशा दी इसलिए धर्म विकृत हुआ, धर्म मार्गच्युत हुआ और सारी मनुष्य-जाति धीरे-धीरे अधार्मिक होती चली गई।
मनुष्य-जाति को अधार्मिक बनाने वालों में उन लोगों का हाथ नहीं है जिन्हें हम नास्तिक कहते हैं, जिन्हें हम अधार्मिक कहते हैं। मनुष्य-जाति को अधार्मिक बनाने वाले लोगों में उनका हाथ है जिन्होंने जीवन की निंदा की, जिन्होंने जीवन को बुरा कहा, जिन्होंने जीवन को दुख और पीड़ा कहा और जिन्होंने जीवन से ही छुटकारे को ही धर्म का लक्ष्य बनाया। धर्म का लक्ष्य जीवन से छुटकारा नहीं है, धर्म का लक्ष्य तो और परिपूर्ण जीवन को उपलब्ध करना है। धर्म का लक्ष्य जीवन से भाग जाना नहीं है, धर्म का लक्ष्य तो उस जीवन को उपलब्ध करना है जिसका फिर कोई अंत नहीं होता है। धर्म तो परम जीवन की दिशा है। और धर्म दुख के भाव से पैदा नहीं होता। दुख के भाव से कभी भी कोई स्वस्थ चीज पैदा नहीं होती है। दुख के भाव से हमेशा अस्वस्थ दृष्टियां होती हैं--रुग्ण और बीमार और विक्षिप्त।
आनंद के भाव से जीवन और जीवन के स्वस्थ अनुभव, जीवन का सौंदर्य और जीवन का सत्य और जीवन का शिवत्व उपलब्ध होता है।
इसलिए आज के दिन तीसरे सूत्रों में मैं आपसे कहना चाहता हूंः अगर जीवन को धार्मिक बनाना है, तो दुख के भाव को छोड़ देना होगा और आनंद के भाव को जगह देनी होगी।
दुख का भाव क्या है? और आनंद का भाव क्या है? किस भांति हमारे मन से दुख के भाव को धीरे-धीरे बिठाया गया और किस भांति हमारे मन में आनंद का भाव तिरोभूत हो गया। यह सब समझ लेना जरूरी है।
पहली बात, एक बड़े रहस्य की बात, अगर मैं एक फूल लेकर आपके पास आऊं, एक बहुत सुंदर फूल लेकर आपके पास आऊं, एक गुलाब का फूल लेकर आपके पास आऊं, और अगर आप जीवन को दुख से देखने के आदी हो गए हैं, और मैं आपसे कहूं कि कितना सुंदर फूल है, आप कहेंगे, छोड़ो भी, यह फूल सुंदर नहीं हो सकता, इस फूल में इतने कांटे होते हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं। यह फूल सुंदर कैसे हो सकता है? गुलाब सुंदर कैसे हो सकता है? गुलाब में कितने कांटे हैं! कांटे देखो और कांटों की गिनतियां करो, तो करोड़ कांटे हैं तब कहीं एक फूल है। फूल सुंदर नहीं हो सकता। लेकिन अगर आप आनंद के भाव में दीक्षित हो गए हैं, तो मैं एक गुलाब का कांटा भी लेकर आपके पास आऊं, तो आप कहेंगे, धन्य है यह कांटा, क्योंकि इस कांटे के बीच यह गुलाब का फूल पैदा होता है। तो आप कहेंगे, यह कांटा भी कांटा नहीं हो सकता, क्योंकि यह गुलाब का कांटा है। एक दुखी व्यक्ति देखता है, हजारों कांटों की गिनती कर लेता है, और तब कहता है कि इतने कांटे, इतने कांटे कि एक फूल की कीमत नहीं है कोई। एक फूल का कोई मूल्य नहीं है, हो या न हो बराबर है। लेकिन आनंद के भाव से देखने वाले को दिखाई पड़ता हैः कितनी अदभुत है यह दुनिया! जहां इतने कांटे हैं वहां एक फूल भी पैदा होता! और जब कांटों में फूल पैदा हो सकता है, तो कांटे हमारे देखने के भ्रम होंगे, क्योंकि जिन कांटों के बीच फूल पैदा हो जाता है वे कांटे भी छिपे हुए फूल सिद्ध हो सकते हैं।
जो कांटों की गिनती करता है उसके लिए फूल भी कांटा दिखाई पड़ने लगता है
और जो फूल के आनंद को अनुभव करता है उसके लिए धीरे-धीरे कांटे भी फूल बन

जाते हैं। एक दुखी और निराश और उदास चित्त से अगर हम पूछें कि कैसी दुनिया तुमने पाई? वह कहेगा, बहुत बुरी थी यह दुनिया; दो अंधेरी रातें होती थीं, तब कहीं मुश्किल से एक छोटा सा दिन होता था। एक आनंद के भाव में डूबे आदमी से हम पूछें कि कैसी पाई तुमने दुनिया? वह कहेगा, बड़ी अदभुत थी; दो उजाले से भरे हुए दिन होते थे, तब कहीं एक छोटी सी बीच में अंधेरी रात होती थी। रातें भी हैं, दिन भी हैं। कांटे भी हैं, फूल भी हैं। लेकिन हम क्या देखते हैं, हमारी दृष्टि क्या है, इस पर पूरी की पूरी जीवन की दिशा और जिनका आयाम निर्धारित होगा। और आश्चर्य तो यह है कि हम जो देखना शुरू करते हैं, धीरे-धीरे, धीरे-धीरे उसके विपरीत जो था वह भी उसी में परिवर्तित होता चला जाता है। वह भी उसी में परिवर्तित होता चला जाता है--कांटे फूल बन सकते हैं, फूल कांटे बन सकते हैं। हमारी दृष्टि पर निर्भर है कि हम किस भांति देखना शुरू करते हैं।
एक अंधेरी रात में एक गरीब फकीर के झोपड़े पर एक चोर घुस आया, उसने आकर द्वार पर धक्का दिया। वह गरीब फकीर का झोपड़ा था, द्वार पर कोई ताला नहीं लगा था, न सांकल बंद थी। घरों के ताले और सांकलें हम इसलिए थोड़े ही बंद करते हैं कि बाहर चोर है, बल्कि इसलिए कि हमारे भीतर भी चोर बैठा हुआ है, उससे हम हमेशा सचेत हैं। वह गरीब फकीर था, उसे चोरों का कोई ख्याल भी न था, द्वार अटका था, धक्का दिया, चोर भीतर घुस गया। चोर घबड़ा गया। आधी रात थी, उसे पता न था कि घर का मालिक जागता होगा। लेकिन वह फकीर बैठ कर किसी को चिट्ठी लिख रहा था। उस चोर ने घबड़ाहट में छुरा बाहर निकाल लिया। सामने मालिक था, लेकिन उस फकीर ने कहाः मेरे भाई, थोड़ी देर बैठ जाओ, मैं चिट्ठी पूरी कर लूं, कोई जल्दी तो नहीं है? वह चोर घबड़ाहट में बैठ गया। कुछ उसे सूझा नहीं कि क्या करे और क्या न करे, लेकिन छुरा सामने लिए रहा। उस फकीर ने कहा कि क्यों व्यर्थ हाथ थकाते हो? छुरे को भीतर रख लो। यहां छुरे की कोई भी जरूरत नहीं पड़ेगी। फिर उसने चिट्ठी पूरी की और पूछा कि कैसे आए हो? क्या इरादा है? मैं क्या सेवा कर सकता हूं? अगर तुम कुछ, क्या इरादे से आए हो, मुझे पता चल जाए? उसकी सीधी, सरल, निर्दोष आंखों में उस चोर ने झांका और झूठ बोलने का साहस उसे नहीं हो सका। उसने कहाः मैं चोरी करने आया हूं, मुझे क्षमा करें।
उस फकीर ने कहाः बड़ी मुश्किल में डाल दिया तुमने मुझे। अगर चोरी ही करने आना था, तो पहले से खबर भेज देते, मैं कुछ इंतजाम कर रखता। यहां तो कुछ भी नहीं है। और तुम खाली हाथ लौटोगे, तो जीवन भर के लिए मेरे मन में पीड़ा रह जाएगी। उसकी आंख में आंसू आ गए और उसने हाथ आकाश की तरफ उठाया और कहाः हे परमात्मा! यह दुख भी देखने को बचा था! इसका मुझे ख्याल न था, एक आदमी आधी रात को आएगा! बहुत मुसीबत में होगा, तभी तो! आधी रात को अंधेरे में कौन निकलता है घर से? और वह भी एक फकीर के झोपड़े पर चोरी करने आएगा? और मेरे पास कुछ भी नहीं है। तभी उसे ख्याल आया कि सुबह दो दिन पहले कोई दस रुपये भेंट कर गया था और वे आले में पड़े हैं। फिर उसने कहा, ठीक है, बहुत ज्यादा तो नहीं, लेकिन कोई दो दिन पहले कुछ रुपये भेंट कर गया था और वे दस रुपये आले में पड़े हैं। अगर वे बहुत कम न मालूम पड़ें तो मेरे मित्र तुम उन्हें उठा लो। और अब दुबारा जब भी आओ, तो मुझे पहले से खबर कर देना, मैं कुछ इंतजाम करके रखूंगा। और ऐसी अंधेरी रातों में मत आया करो, भरे उजाले में दिन में आ गए। रास्ते खराब हैं, चोट खा सकते हो, भटक सकते हो, पत्थर पड़े हैं मार्ग पर, और यह ऊबड़-खाबड़ जगह है जहां मैं रहता हूं। यह झोपड़ा गरीब फकीर का गांव के बाहर है। दिन में आ गए। उजाले में आ गए। चोट लग जाए, गिर पड़ो, हाथ-पैर टूट जाए, कुछ हो जाए, तो फिर मुसीबत हो सकती है।
वह चोर तो बहुत हैरान हो गया। उसे कल्पना भी न थी कि चोर के साथ कोई ऐसा व्यवहार करेगा। उसे उठते न देख कर वह फकीर उठा और उसने दस रुपये उठा कर उसे आले में से दे दिए और कहा, ये दस रुपये हैं। अगर तुम नाराज न हों, तो एक रुपया इसमें से छोड़ दो, मैं बाद में वापस लौटा दूंगा। कल सुबह ही सुबह शायद मुझे कोई जरूरत पड़ जाए। मैं वापस लौटा दूंगा, यह उधारी रही मेरे ऊपर। वह चोर कहने लगा, इसमें उधारी की क्या बात है, सब आपका है। उस फकीर ने कहाः अगर मेरा ही कुछ होता, तो मैं फकीर ही क्यों होता। मेरा कुछ नहीं है, इसलिए तो

मैं फकीर हो गया। सब उधार है, सब चोरी है। जो भी जिसके पास है वह उधार है। और जो भी जिसके पास है, सब चोरी है। सब संपत्ति चोरी है, क्योंकि कोई आदमी कुछ भी लेकर नहीं आता और कोई आदमी कुछ भी लेकर नहीं जाता, मेरा कुछ भी नहीं है। कल सुबह जरूरत पड़ जाएगी, इसलिए रोक रखता हूं। फिर वापस लौटा दूंगा। वह एक रुपया छोड़ कर चोर भागा। वह घबड़ा गया था बहुत, इतना वह कभी किसी
से नहीं घबड़ाया। क्योंकि जिनसे मिला था वे भी उसी तरह के लोग थे जिस तरह का यह आदमी था। कोई छोटा चोर है, कोई बड़ा चोर है। जिनसे भी मुलाकात हुई थी वे एक ही जाति के लोग थे। यह आज पहली दफा एक अनूठे और अजनबी आदमी से, स्ट्रेंजर से मिलना हो गया था। जिसको समझना मुश्किल था। बहुत घबड़ा गया था। वह भागने लगा दरवाजे से निकल कर। उस साधु ने कहा कि रुको! दरवाजा तुमने खोला था, कम से कम उसे बंद तो कर जाओ। किसी का दरवाजा खोले तो बंद कर दिया करो। दरवाजा बंद कर दो, क्योंकि रुपये कल तुम्हारे खत्म हो जाएंगे, लेकिन द्वार बंद करके तुम जो प्रेम मेरी तरफ प्रकट कर जाओगे वह आगे भी काम पड़ सकता है। उस चोर ने जल्दी से दरवाजा बंद किया। उस फकीर ने उसे धन्यवाद दिया कि धन्यवाद मेरे मित्र, जमाने बहुत बुरे हो गए हैं, कौन किसका दरवाजा बंद करता है!
वह चोर तो चला गया। एक वर्ष बाद वह चोर किसी दूसरी चोरी में पकड़ा गया।
उस पर मुकदमा चला। उस पर और चोरियां थीं, उन्हीं चोरियों में पुलिस ने यह भी पता लगाया कि एक रात उसने गांव बाहर जो साधु है उसके झोपड़े पर भी चोरी की थी। चोर बहुत घबड़ाया हुआ था। उस साधु को भी अदालत में बुलवाया गया। चोर बहुत डरा हुआ था। जब उस साधु ने इतना भी कह दिया कि हां, इस आदमी को मैं पहचानता हूं, यह एक रात आया था, तो किसी और प्रमाण की जरूरत नहीं रह जाएगी। वह इतना प्रसिद्ध आदमी था। उसका एक शब्द कि यह आदमी चोरी करने आया था काफी था, सब प्रमाण पूरा हो जाएगा। चोर बहुत डरा हुआ था।
फिर वह साधु आया और न्यायाधीश ने उससे पूछा कि तुम इस आदमी को पहचानते हो? उस साधु ने कहाः भलीभांति। ये तो मेरे पुराने दोस्त हैं, इन्हें मैं अच्छी तरह जानता हूं। चोर घबड़ाया। उस न्यायाधीश ने कहाः कभी यह तुम्हारे यहां चोरी करने आया था? उस साधु ने कहा कि नहीं, चोरी करने तो यह कभी भी नहीं आया। हां, दस रुपये जरूर मैंने इसे भेंट किए थे, लेकिन वह चोरी नहीं थी, मैंने भेंट किया था। एक रुपया उसमें से अब भी मेरे ऊपर उधार है, वह मैं ले आया हूं, उसको एक रुपया मुझे देना है। उधारी मेरी ऊपर है। और यह आदमी तो बहुत प्यारा है। मैंने इसे दस रुपये भेंट किए थे, इसने मुझे धन्यवाद दे दिया था, बात समाप्त हो गई थी। इसका चोरी से क्या संबंध है?
वह न्यायाधीश बहुत हैरान हो गया! उसने कहा कि तुम क्या कहते हो? यह आदमी तुम्हारे घर चोरी करने गया था। उस फकीर ने कहाः जब से मेरे भीतर का चोर मर गया, मुझे कोई चोर दिखाई नहीं पड़ता है। मुझे माफ करें, किसी चोर को पूछें तो वह इसकी चोरी के बाबत कुछ बता सकेगा। मेरे भीतर का चोर जब से मर गया, मुझे कोई चोर नहीं दिखाई पड़ता है।
जीवन वैसा ही दिखाई पड़ता है जो हमारे भीतर है। लोग मुझसे आकर पूछते हैं, ईश्वर है? ईश्वर कहां है? मैं उनसे कहता हूं, ईश्वर नहीं है, ईश्वर नहीं हो सकता, क्योंकि तुम्हारे भीतर आनंद का भाव नहीं है। वह तो आनंद के भाव में देखी गई सत्ता है। यही जीवन, यही पौधे, यही पशु, यही पक्षी, यही मनुष्य, यही सब कुछ जिस दिन आनंद के भाव से देखा जाता है तो परमात्मा हो जाता है। संसार और परमात्मा दो नहीं हैं, एक ही अस्तित्व को दो ढंग से देखे जाने पर--दुख के ढंग से देखे जाने पर संसार है, आनंद के ढंग से देखे जाने पर परमात्मा है।
तो जिन लोगों ने हमें यह सिखा दिया है कि जीवन दुख है, बुरा है, असार है, छोड़ो, भागो, जीवन से हटो, जीवन की सार, सारी धाराएं तोड़ दो, सब खंडित कर दो, जीवन के सेतु अपने बीच सब द्वार तोड़ दो, सेतु तोड़ दो। जिन लोगों ने यह सिखाया, वे लोग सोचते रहे होंगे कि मनुष्य-जाति को परमात्मा की ओर ले जा रहे हैं, लेकिन वे ही लोग मनुष्य-जाति को परमात्मा से वंचित करने का कारण बन गए हैं। उन्होंने किस भांति सिद्ध कर दिया है कि जीवन दुख है? किसी भी चीज को व्यर्थ सिद्ध करने का एक सीक्रेट है, एक राज है, एक रास्ता है। और एक

ही रास्ता है किसी भी चीज को व्यर्थ सिद्ध कर देने का। और जिस आदमी को वह तरकीब हाथ में आ जाए, वह किसी भी चीज को व्यर्थ सिद्ध कर सकता है। वह तरकीब हैः विश्लेषण। वह तरकीब है, एनालिसिस।
मैं एक गांव में गया। एक बहुत सुंदर जलप्रपात था वहां। पहाड़ से एक बहुत खूबसूरत नदी गिरती थी। चांदनी रात में, जिन मित्र के घर मैं मेहमान था, वे अपनी कार में लेकर मुझे उस पहाड़ी पर गए। रास्तो थोड़ी दूर ही पहले खत्म हो जाता था; फिर थोड़ी दूर पैदल जाना पड़ता था। पूर्णिमा की रात थी और उस नदी का पहाड़ से गिरना और उसका गर्जन दूर तक सुनाई पड़ता था। हवाएं ठंडी हो गई थीं और उस चांदनी रात में वह नदी एक अदभुत आकर्षण की तरह हमें खिंच लिए जाती थी। हम गाड़ी से नीचे उतरे। गाड़ी को जो ड्राइवर साथ लाया था, वह गाड़ी के भीतर ही बैठा रहा। मैंने अपने मित्र को कहाः आप अपने ड्राइवर को भी बुला लें। मैंने उस ड्राइवर को आवाज दी कि दोस्त, तुम भी आ जाओ। उसने कहाः क्या खाक रखा है वहां? कुछ पत्थर पड़े हैं और पानी गिरता है, और वहां कुछ भी नहीं है। और वह ड्राइवर कहने लगा, मैं तो हमेशा हैरान होता हूं कि लोग क्या देखने आते हैं? वहां कुछ भी नहीं है साहब, थोड़े से पत्थर पड़े हैं और पानी गिरता है।
यह ड्राइवर धर्मगुरु हो सकता था। उसने जलप्रपात को, उस पूर्णिमा की रात को, उस सौंदर्य को तोड़ कर एनालिसिस करके दो टुकड़ों में रख दिया कि वहां पत्थर पड़े हैं और कुछ पानी गिरता है, वहां कुछ भी नहीं है।
एक कवि देखता है फूल में न मालूम किस सौंदर्य की प्रतिमा को। एक कवि देखता है फूल में न मालूम किस अनुभूति को, न मालूम कौन से द्वार खुल जाते हैं, न मालूम किस अज्ञात लोक में वह प्रविष्ट हो जाता है। और जाकर पूछें किसी वनस्पति शास्त्री को, वह कहेगा, क्या रखा है उस फूल में? कुछ थोड़े से केमिकल्स, कुछ थोड़े से रसायन, कुछ थोड़ा सा खनिज, और कुछ भी नहीं हैं उस फूल में। क्यों पागल हुए जाते हो? किसकी कविता लिखते हो? एक छोटे से केमिस्ट्री के फार्मूले में सब जाहिर हो जाता कि फूल में क्या है। फूल में कुछ भी नहीं है। उसने एनासिलिस कर दी, उसने तोड़ कर बता दिया कि फूल में इतने-इतने रसायन हैं, इतना-इतना खनिज है, इतनी-इतनी चीजें मिली हैं, और फूल में कुछ भी नहीं है।
मैं किसी को प्रेम करूं और पहुंच जाऊं किसी शरीर-शास्त्री के पास, वह कहेगा, क्या रखा है इस शरीर में? इसमें कुछ भी नहीं है--कुछ हड्डियां हैं, कुछ मांस है, कुछ मज्जा है, कुछ खून है, और कुछ भी नहीं है। पहुंच जाऊं किसी रासायनिक के पास, तो वह कहेगा, एक आदमी के शरीर में मुश्किल से चार रुपये बारह आने का सामान होता है, इससे ज्यादा का नहीं। कुछ लोहा होता है, कुछ केल्शियम होता है, कुछ फलां होता है, कुछ ढिकां होता है। अगर बाजार में खरीदने जाएं, तो चार-पांच रुपये में सब मिल जाता है। क्यों परेशान हो रहे हैं इसको प्रेम करने के लिए? शरीर में कुछ भी नहीं है। यह चार-पांच रुपये का सामान है, बाजार से खरीद लें, एक पेटी में रख लें, खूब प्रेम करें। वह बात बिल्कुल ठीक कह रहा है। उसने आदमी के शरीर का विश्लेषण करके बता दिया कि इतना लोहा है, इतना फलां है, इतना यह है। इसमें ज्यादा कुछ है नहीं। क्यों परेशान हुए जाते हैं? इसमें प्रेम करने की बात कहां है। उसने एनालिसिस कर दी, उसने चीजों को तोड़ कर रख दिया।
एक बड़ी प्यारी कविता है, उसे सुनते हैं तो प्राणों के तार झनझना जाते हैं। उसे सुनते हैं तो कोई प्राणों की वीणा बज उठती है। लेकिन पहुंच जाएं किसी व्याकरण के जानने वाले के पास, किसी ग्रेमेरिएन के पास, वह कहेगा, क्या खाक रखा है इसमें! कुछ शब्दों का जोड़ है। एक-एक शब्द तोड़ कर रख देगा। मार्क ट्वेन एक अपने मित्र उपदेशक का भाषण सुनने गया था। वह उपदेशक बहुत अदभुत था। उसकी वाणी में कुछ जादू था, कोई बात थी। सुनने वालों के प्राण किसी दूसरे स्तर पर उठ जाते थे। एक, डेढ़ घंटे तक मार्क ट्वेन उसे सुनता रहा। लोग मंत्रमुग्ध थे। फिर मार्क ट्वेन बाहर निकला। उसके मित्र उपदेशक ने पूछा कि कैसा लगा? मैंने जो कहा, वह कैसा लगा? मार्क ट्वेन ने कहाः कुछ भी नहीं। सब गड़बड़ था और सब उधार था। एक किताब मेरे पास है, उसमें यह सब लिखा हुआ है जो तुम बोले। एक-एक शब्द लिखा हुआ है उसमें। बड़े बेईमान

आदमी मालूम होते हो, इसमें तुमने कुछ भी नहीं बोला। मेरे पास एक किताब है, उसमें सब लिखा है।
वह बहुत हैरान हो गया। उसने कहाः कौन सी किताब, जिसमें यह लिखा हुआ है एक-एक शब्द? मैं तुमसे शर्त बदता हूं, क्योंकि मैंने तो आज तक कोई किताब पढ़ी नहीं। मैंने जो कहा है, वह मैंने कहा है। मार्क ट्वेन ने उससे एक-एक हजार रुपये की शर्त बद ली। वह उपदेशक बहुत हैरान था कि यह कैसे हो सकता है। दूसरे दिन मार्क ट्वेन ने एक डिक्शनरी उसके पास भेज दी कि इसमें सब शब्द लिखे हुए हैं। जो भी तुम बोले इसमें सब लिखा हुआ है। एक-एक शब्द लिखा हुआ है। पढ़ लो और एक हजार रुपये मुझे भेज दो।
उसने विश्लेषण कर दिया। मार्क ट्वेन ठीक कहता है। डिक्शनरी में लिखा हुआ है। सभी शब्द लिखे हुए हैं। जो भी दुनिया में कोई बोल सकता है, सब लिखे हुए हैं। लेकिन बोलना शब्दों का जोड़ नहीं है और न आदमी हड्डियों और मांस-मज्जा का जोड़ है, न फूल रसायन और खनिज का जोड़ है, और न कविता व्याकरण के नियमों का जोड़ है। जिंदगी चीजों का जोड़ नहीं है, जोड़ से कुछ ज्यादा है। और वह ज्यादा उसको दिखाई पड़ता है जो चीजों को तोड़ता नहीं जोड़ता है। उस ज्यादा को देख लेना ही धार्मिक मनुष्य का अनुभव है।
पिकासो का नाम सुना होगा। एक अदभुत चित्रकार है। एक पेंटर है। एक अमरीकी करोड़पति ने अपना एक चित्र बनवाया पिकासो से। करोड़पति था। उसने यह उचित न समझा कि दाम पहले तय कर ले। कितना मांगेगा ज्यादा से ज्यादा? फिर उसके पास पैसे की कोई कमी भी न थी। पिकासो ने भी दाम तय करने की बात कोई ठीक न समझी। चित्र दो साल में बना। वह करोड़पति बार-बार पूछवाता रहा कि चित्र बन गया कि नहीं? पिकासो ने कहाः थोड़ा धैर्य रखिए, एकदम आसान बात नहीं है। भगवान भी आपको बनाता है, तो नौ महीने लग जाते हैं पेट में। मैं तो भगवान नहीं हूं, मैं तो एक साधारण मनुष्य हूं, मैं बना रहा हूं आपको फिर से दुबारा। दो-चार वर्ष लग जाए तो कोई कठिन नहीं है।
बड़ा हैरान था वह करोड़पति कि क्या पागलपन की बातें कर रहा है! मेरा चित्र बना रहा है तो क्या दो-चार वर्ष लगाएगा फिर? दो वर्ष बाद उसने खबर भेजी कि चित्र बन गया, आप आ आएं और चित्र ले जाएं। वह करोड़पति लेने आया। चित्र सुंदर बना था, उसे बहुत पसंद पड़ा। उसने पूछाः इसके दाम? पिकासो ने कहाः पांच हजार डालर। उसने कहाः क्या? पांच हजार डालर! छोटा सा कैनवास और थोड़े से रंग, इसका दाम पांच हजार डालर? क्या मजाक करते हैं? इस कैनवास के टुकड़े की और इन रंगों की इतनी कीमत? दस-पांच रुपये बाजार में मिल जाएगा यह सब सामान। उसने एनालिसिस कर दी, उसने विश्लेषण कर दी कि इतनी-इतनी चीजों से मिल कर बना है। इसका दाम पांच हजार डालर! यह कोई बात है!
पिकासो ने अपने सहयोगी को कहा कि जा भीतर, इससे बड़ा कैनवस का टुकड़ा ले
आ और रंग की पूरी की पूरी ट्यूब ले आ और इनको दे दे। और जितने दाम ये देते हों दे जाएं। उसका साथी गया, वह एकदम कैनवस ले आया और रंग की भरी हुई ट्यूब ले आया, लाकर सामने रख दिया और कहाः अब आपकी जो मर्जी हो दस-पांच डालर वह दे जाएं और ले जाएं। यह आपका पोट्रेट रहा। वह करोड़पति कहने लगा, क्या मजाक करते हैं? रंग को और कैनवस को ले जाकर मैं क्या करूंगा?
पिकासो ने कहाः फिर याद रखें, चित्र रंग और कैनवस का जोड़ नहीं है, उन दोनों से कुछ ज्यादा है। रंग और कैनवस के द्वारा हम उसको उतारते हैं जो रंग और कैनवस नहीं है। रंग और कैनवस सिर्फ ऑपरच्युनिटी है, सिर्फ अवसर है। उनके माध्यम से हम उनको प्रकट करते हैं जो कि रंग और कैनवस के बाहर हैं और रंग और कैनवस से जिनका कोई संबंध भी नहीं है। हम दाम उनके मांगते हैं। और अब पांच हजार में निपटारा नहीं होगा, पचास हजार देते हों तो ठीक। अब यह बिक्री नहीं होगी। पचास हजार डालर उस चित्र के दिए गए। वह उसे पांच डालर की चीज न मालूम पड़ती थी, वह पचास हजार डालर की कैसे दिखाई पड़ी? दिखाई पड़ी इसलिए कि अगर चीजों को हम तोड़ कर देखें, तो दो कौड़ी की हो जाती हैं और उन्हें जोड़ कर देखें, तो उनमें एक अदभुत अर्थ प्रकट हो जाता है।
जीवन में अगर दुख और निसार और असार को साधना हो, तो तोड़ कर देख लें पूरी जिंदगी को, सब व्यर्थ हो जाएगा। और अगर जिंदगी में परमात्मा को खोजना हो, तो एनालिसिस नहीं सिंथीसिस, चीजों को जोड़ कर देखना है। और ग्रेटर

टोटेलिटी में, और बड़ी समग्रता में। और बड़ी समग्रता में चीजों को जोड़ कर देखना है। अंततः एक पूरी इकाई में जिस दिन सारी चीजें जोड़ कर देखी जाती है, उस दिन परमात्मा प्रकट हो जाता है।
तो दुख का मार्ग है, विश्लेषण और आनंद का मार्ग है, संश्लेषण। केवल वे
ही लोग आनंद को उपलब्ध होते हैं जो संश्लेषण की विधि में दीक्षित हो जाते हैं। लेकिन हम सारे लोग विश्लेषण की विधि में दीक्षित किए गए हैं। पहले धर्मों ने विश्लेषण सिखाया, फिर पीछे विज्ञान ने विश्लेषण सिखाया। और संश्लेषण की कोई शिक्षा न रह गई कि हम चीजों को जोड़ कर देख सकें, हम चीजों को इकट्ठा होकर देख सकें, हम चीजों को उनके इकट्ठेपन में देख सकें। उनके टुकड़े-टुकड़े अंशों में नहीं, खंडों में नहीं। जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, वह अखंड में है। और जीवन में जो भी व्यर्थ है, वह खंडों में है। किसी भी चीज को व्यर्थ करना हो, खंडों में तोड़ लें और देख लें, वह व्यर्थ हो जाएगी। और किसी भी चीज को सार्थक करना हो, तो उसे अखंड में देखें और वह सार्थक हो जाएगी।
आनंद की दृष्टि, आनंद की साधना जीवन के सब खंडों में अखंड को देखने की साधना है। टुकड़ों में, पार्ट्स में होल को देखने की साधना है। और दुख की दृष्टि सब अखंडों को, खड़ों में, टुकड़ों में तोड़ने की साधना है।
अंतिम यह बात, तीसरा सूत्र जीवन की क्रांति के लिए आपको कहना चाहता हूं, और वह यह कि जीवन को संश्लेषण में देखें। जोड़ें और देखें। चीजों को ज्यादा से ज्यादा बड़े जोड़ में देखें। और तब आप पाएंगे कि रंग और कैनवस के ऊपर जो है उसकी झलक मिलनी शुरू हो गई। और तब आप पाएंगे, शब्द और व्याकरण के जो ऊपर है उस काव्य की अनुभूति आनी शुरू हो गई। और तब आप पाएंगे कि खनिज और रसायन के जो ऊपर है उस फूल का दर्शन शुरू हो गया। और तब आप पाएंगे, हड्डी मांस और मज्जा के जो ऊपर है उस आत्मा की किरणें उतरने लगीं। और तब आप पाएंगे कि मिट्टी, पत्थर और आकाश के जो ऊपर है उस परमात्मा के द्वार भी खुलने शुरू हो गए हैं।
यह द्वार जब भी खुलता है, ऐसे ही खुलता है। और यह द्वार जब भी बंद होता है, तो ऐसे ही बंद हो जाता है। द्वार हम बंद किए बैठे हैं। हम अपनी पीठ किए बैठे हैं उस तरफ जहां मार्ग हो सकता है, और उस तरफ आंखें किए बैठे हैं जहां मार्ग नहीं हो सकता है। इसलिए हम दुखी हैं, इसलिए हम पीड़ित हैं, इसलिए हम परेशान हैं। और इस परेशानी में, इस दुख में, इस पीड़ा में, इस अशांति में हम किन्हीं भी द्वारों पर भीख मांगने खड़े हो जाते हैं, हमें कोई रास्ता बताओ। और रास्ता बताने वाले लोग मिल जाते हैं। लेकिन मजा यह है, ये वे ही लोग हैं रास्ता बताने वाले लोग जिसने यह सारी की सारी समस्या खड़ी कर दी है। वे फिर यही समझाते हैं कि जीवन असार है। जब तब जीवन को असार न समझोगे, शांत नहीं हो सकोगे। वे समझाते हैं, जीवन दुख है, छोड़ो जीवन को, हटो जीवन से। संन्यास की तरफ चलो, छोड़ो सब। पलायन करो। भागो जीवन से। तभी शांति मिलेगी। जीवन में कभी किसी को शांति मिली है? जीवन को छोड़ने से शांति मिलती है। संसार को छोड़ो तो शांति मिलती है। शरीर को छोड़ो तो शांति मिलती है। और छोड़ो तो इस समझाने के लिए सब व्यर्थ है, जानो। दुख है, पीड़ा है, सह असार है, यह जानो। मैंने सुना है, एक रात स्वर्ग के एक रेस्तरां में बड़ा मजा हो गया। इधर जमीन पर देख-देख कर देवताओं ने भी रेस्तरां वगैरह खोल लिए होंगे स्वर्ग में। क्योंकि देवता आदमी से पीछे रह जाए, इसका कोई कारण तो नहीं है। एक रेस्तरां है स्वर्ग का। लाओत्सु चीन का एक अदभुत विचारक बुद्ध को हाथ पकड़े हुए उस रेस्तरां में लिए चला जा रहा है। पीछे-पीछे कनफ्यूशियस भी चला आ रहा है। वे तीनों जाकर एक टेबल पर बैठे गए हैं। बुद्ध तो आंखें बंद किए हैं, वे कहते हैं, मुझे बाहर जाने दो, मुझे कुछ रस-रंग नहीं आता इन सब बातों में। वहां अप्सराएं नाचे चली जाती हैं। बुद्ध कहते हैं, मैंने बहुत अप्सराएं देखीं, मैंने बहुत नाच देखे, उन सबको छोड़ कर ही मैं जंगल भाग गया था। मुझे नहीं देखने हैं ये सब। वे आंख बंद किए बैठे हैं। कनफ्यूशियस आधी आंख खोल कर देख रहा है। क्योंकि कनफ्यूशियस कहता था, अति एक्सट्रीम पर कभी नहीं होना चाहिए। न पूरी आंख खोलो, न पूरी आंख बंद करो। आधी से देखते रहो, आधी बंद भी रखो। जरूरत पड़े तो बंद में भी सम्मिलित हो जाओ, जरूरत पड़े तो

खुले में भी सम्मिलित हो जाओ। तो आधी आंख से नाच भी देखे चला जाता है, आधी आंख से वह ध्यान में भी बना चला जाता है। लेकिन लाओत्सु तो पूरा डांवाडोल हुआ जा रहा है, टेबल ठोक रहा है, उसके पैर थिरक रहे हैं, वह तो नाच में लीन हो गया है, वह तो आनंद से भर गया है।
और तभी एक अप्सरा नाचती हुई आती है, वह हाथ में एक जीवन के रस की प्याली लिए हुए है। जीवन-रस की प्याली भरे हुए है। और वह आकर कहती है, जीवन-रस लेंगे? जीवन-रस पीएंगे? बुद्ध ने तो बिल्कुल पीठ फेर ली और आंख बंद कर ली और कहा, जीवन का नाम न ले यहां। जीवन तो दुख है, जीवन तो पीड़ा है, जीवन तो असार है, नाम मत ले यहां जीवन का। यह जीवन ही बंधन है। हटो यहां से दूर। कहा कि मुझे बाहर ले चलो, मैं यहां नहीं बैठना चाहता हूं। जहां जीवन की चर्चा होती है वहां भी नहीं रुकना चाहता हूं। मुझे नहीं पीना है। मैंने बहुत देख लिया है, जीवन बहुत कड़वा है।
कनफ्यूशियस आधी आंखों से देख भी रहा है, आधी आंखें बंद भी किए है। उसने कहाः एक घूंट तो कम से कम लेकर देख लूं। क्योंकि बिना पीए कह देना कि कड़वा है, अति है, एक्सट्रीम है। पूरा पी लेना दूसरी अति है। एक घूंट ले लेना गोल्डन मीन है। बीच का मार्ग है, मध्य मार्ग है। एक घूंट तो कम से कम लेकर देख लूं। उसने एक घूंट उस जीवन-रस की प्याली से पीआ और कहा कि नहीं- नहीं, कोई सार नहीं है। न तो आनंदपूर्ण है, न दुखपूर्ण है। उसने कहाः न आनंदपूर्ण है, न दुखपूर्ण है। कोई सार नहीं है, कोई असार भी नहीं है। पीओ तो ठीक न पीओ तो ठीक। सब बराबर है। फिर उसने अपनी आधी आंखें बंद कर लीं, आधी खोल लीं। और बैठ गया।
लाओत्सु ने पूरी प्याली हाथ में ले ली। वैसे मुग्धभाव से पूरे हाथ में ले लिया। उसने इतनी कृतज्ञता और ग्रेटिट्यूड से पूरी प्याली हाथ में ले ली। उसने न कुछ कहा, न कुछ बोला, न कोई वक्तव्य दिया। वह तो पूरी प्याली को पी गया। पूरी प्याली रख दी उसने नीचे और उठ कर नाचने लगा। और उठ कर नाचने लगा।
कनफ्यूशियस उससे पूछने लगा कि क्या हुआ? बता। उसने कहाः जो हुआ, बताया नहीं जा सकता। लेकिन उसे केवल वे ही जानते हैं जो पूरे जीवन को पी लेते हैं। उसे केवल वे ही जानते हैं जो पूरे जीवन के साथ एकरस हो जाते हैं। उसे केवल वे ही जानते हैं जो पूरे जीवन में तल्लीन हो जाते हैं, पूरे जीवन में डूब जाते हैं। उसे वे नहीं जानते जो किनारे पर बैठे रहते हैं। जो जीवन की धारा में पूरी डुबकी ले लेते हैं वे ही जानते हैं। वह नाचने लगा। वह भावविभोर।
ये तीन दृष्टियां हो सकती हैं--न बुद्ध से मतलब है कोई मुझे, न कनफ्यूशियस से, न लाओत्सु से। यह कहानी किसी पुराण में नहीं लिखी है, नहीं तो आप खोज-बीन में लग जाएं और फिर मुझे दोष देने लगें। यह भविष्य में कभी कोई पुराण लिखा जाएगा, तो उसमें लिखी जाएगी। यह अभी लिखी हुई नहीं है। एक दृष्टि है कि जीवन को छुओ ही मत, आंख पूरी बंद कर लो। यह दृष्टि घातक है। यह दृष्टि कभी जीवन के सत्य को नहीं जान सकती है। एक दृष्टि है, बीच में तटस्थ हो जाओ। आधी आंख खुली, आधी बंद रखो। यह उदास, उदासीन की दृष्टि है। दुखी की नहीं, उदासीन की दृष्टि है।
पहली दृष्टि पहले पत्थर तोड़ने वाले की दृष्टि है, जो कहता है, अंधे हो, देखते नहीं कि पत्थर तोड़ रहा हूं? यह दूसरी दृष्टि उदास आदमी की दृष्टि है। जो उदासी से, सुस्ती से आंखें ऊपर उठाता है और कहता है कि अपनी रोटी कमा रहा हूं। न इसमें कोई आनंद का भाव है, न कोई दुख का भाव है। एक बोझिलता, एक बोर्डम, एक ऊब का भाव है। अपना काम कर रहे हैं। यह दूसरी दृष्टि है। और एक तीसरी दृष्टि है, जीवन के पूरे रस में तल्लीन हो जाएं। वह पूरी दृष्टि है उस पत्थर तोड़ने वाले की, जो कहता है, भगवान का मंदिर बना रहा हूं।
जीवन संश्लेषण से देखा जाए तो जीवन भगवान को बनाने की एक प्रक्रिया
हो जाती है। और जीवन को उसकी परिपूर्णता में जीया जाए और डूबा जाए, जीवन के सारे रसों में, जीवन के सौंदर्य में, जीवन के आनंद में, जीवन के फूलों में, जीवन की सुगंध में, जीवन के संगीत में, जीवन के पूरे रस को पी लिया जाए तो फिर कोई नाच उठता है उसकी कृतज्ञता में, उसके ग्रेटिट्यूड में, उसके

धन्यवाद में। फिर उसके हाथ उसके धन्यवाद के लिए जुड़ जाते हैं। उसके प्राण प्रार्थना से भर जाते हैं। और इस आनंद के नृत्य में उसे पहली दफे उसकी झलक मिलती है जो है। केवल आनंद के पुलक में ही उसकी झलक मिलती है जो है। दुखी आंख बंद किए बैठे रह जाते हैं और वंचित रह जाते है।
और जो एक बार इस आनंद की पुलक से जीवन को देखने में समर्थ हो जाता है,
एक किरण भी जिसके जीवन में इस आनंद की उतर जाती है, धीरे-धीरे-धीरे सारा जीवन रूपांतरित हो जाता है, सब ट्रांसफार्म हो जाता है। फिर उसे कांटे नहीं रह जाते, फिर उसे फूल ही फूल हो जाते हैं। फिर उसे रातें नहीं होतीं, फिर उसे दिन ही दिन हो जाते हैं। फिर उसे आंसू नहीं रह जाते, फिर उसके लिए गीत ही गीत हो जाते हैं।
एक छोटी सी घटना और अपनी चर्चा मैं पूरी करना चाहूंगा।
एक सांझ की बात है, आकाश में बादल घिर गए हैं, वर्षा के दिन आने के करीब है, एकाध दिन और और वर्षा होगी। घुमड़-घुमड़ कर बादल आने शुरू हो गए हैं। दो भिक्षु, दो संन्यासी भागे हुए जा रहे हैं एक रास्ते पर अपने झोपड़े की तरफ। वर्षा आ रही है, अब वे चार महीने अपने झोपड़े में रहेंगे। आठ महीने वे घूमते रहते हैं, भटकते रहते हैं, रोटी मांगते रहते हैं और जीवन बांटते रहते हैं। दो कौड़ी की चीज लोगों से ले लेते हैं, शरीर को चलाते हैं और अमृत लुटाते रहते हैं। आठ महीने भागते रहते हैं गांव-गांव, रास्तों-रास्तों कि किसी के रास्ते पर एक दीया जल जाए, कि किसी रास्ते पर फूल रख आए। फिर आठ महीने भागने के बाद चार महीने वर्षा में अपने झोपड़े पर वापस लौट आते हैं।
वे भागे चले जा रहे हैं। झोपड़ा उन्हें दिखाई पड़ने लगा है। नदी के उस पार, पहाड़ के पास उनका झोपड़ा है, लेकिन जैसे-जैसे वे निकट आते हैं, वे कुछ हैरान हुए जा रहे हैं। जवान भिक्षु है एक, एक बूढ़ा भिक्षु है। जवान भिक्षु आगे है थोड़ा, बूढ़ा पीछे है। फिर वह जवान भिक्षु देख पाता है कि झोपड़ा तो टूटा पड़ा है--आधा झोपड़ा हवाओं में उड़ गया मालूम होता है, आधा छप्पर जमीन के पास पड़ा हुआ है। गरीब का झोपड़ा है, उसमें बड़ी ताकत तो नहीं होती है। वह तो हवाओं की कृपा से बना रहता है, नहीं तो हवाएं कभी भी उसको गिरा दें। उसका कोई बल तो नहीं होता, उसका कोई अधिकार तो नहीं होता कि वह बना ही रहेगा। वह तो बना रहता है यह चमत्कार है। गरीब का झोपड़ा है उसके बने रहने की कोई वजह नहीं है, कोई कारण नहीं है। हवाओं की कृपा समझें कि बना रहता है।
वह तो क्रोध से भर गया है भिक्षु, उसने लौट कर अपने बूढ़े भिक्षु को कहा
कि देखते हैं, जिस भगवान के गीत गाते फिरते हैं हम, जिस भगवान के लिए श्वासें लेते हैं, जिस भगवान के लिए जीते हैं, वह भगवान इतनी भी फिकर नहीं कर सकता है कि हमारा झोपड़ा बचा ले? ऐसी ही बातों से तो अविश्वास पैदा हो जाता है। ऐसी ही बातों से लगता है कि नहीं हैं कोई भगवान। सब झूठी है बकवास! गांव में पापियों के महल खड़े हैं, उनमें से किसी का छप्पर नहीं गिर गया और कोई मकान नहीं टूट गया। और हम भिखारियों के मकान तोड़ दिया तुम्हारे भगवान ने? अब रखो तुम अपने भगवान को, मुझे छुट्टी दो। बहुत हो गई यह बकवास। भगवान-वगवान कुछ भी नहीं है। अब वर्षा में क्या होगा? वर्षा सिर पर है, बादल आकाश में घिरे हैं, घुमड़ते हैं, बिजली चमकती है, क्या होगा, अब कहां ठहरोगे? वह इतने क्रोध में हैं कि देख भी नहीं पाया कि जब वह चिल्ला रहा है तब बूढ़ा भिक्षु क्या कर रहा है?
जब बूढ़े भिक्षु ने कोई उत्तर नहीं दिया, तो उसने अपनी आंखें पोंछी-- क्रोध में उसकी आंखों में धुंध आ गई है, खून आ गया है। लौट कर आंखें खोलीं तो देखा कि वह बूढ़ा भिक्षु हाथ जोड़े आकाश की तरफ बैठा है और उसकी आंखों से आंसू से बहे जाते हैं। न मालूम किस आनंद से झरना बहा जाता है। उसने उसे हिलाया और कहाः क्या करते हो? लेकिन वह बूढ़ा कुछ बुदबुदा रहा है। वह कह रहा है कि हे भगवान, तेरी कृपा अनूठी है। हवाओं का क्या भरोसा, आंधियों का क्या भरोसा, वे पूरा झोपड़ा भी उड़ा कर ले जा सकती हैं। आधा बचाया तो जरूर तूने ही बचाया होगा, जरूर तूने ही बचाया होगा।
वह बुदबुदा रहा हैं, उसके हाथ जुड़े हैं, उसकी आंखों से आंसू बहे चले जा रहे हैं, उसके चेहरे पर एक रोशनी झलकी रही है। वह यह कह रहा है, जरूर, आंधियों का क्या भरोसा, अंधी आंधियों का क्या भरोसा, पूरा झोपड़ा उड़ा कर ले

जा सकती थी। जरूर तूने रोका होगा, जरूर तूने बाधा दी होगी, नहीं तो आधा कैसे बचता? धन्यवाद! आधे झोपड़े से भी काम चल जाएगा। जब तूने समझा कि आधा हमारे लिए काफी है, तो हम कैसे समझे कि ना-काफी है? जरूर आधे से काम चल जाएगा।
वह जवान तो क्रोध से भर गया है इस बात को सुन कर। और फिर वे दोनों झोपड़े पर पहुंच गए हैं। बूढ़ा तो ऐसे आनंदमग्न घूम रहा है झोपड़े में, जैसे झोपड़ा महल हो गया हो, जैसे मिट्टी का झोपड़ा सोने का बन गया हो। झोपड़ा टूटा पड़ा है ध्वस्त और वह जवान क्रोध से भरा हुआ है।
फिर रात उतर आई, बादल चमकने लगे और बिजलियां गरजने लगीं और जोर की आवाजें आने लगीं, और वे दोनों सो गए हैं। जवान रात भर करवटें बदल रहा है। क्योंकि जो क्रोध में है वह सो कैसे सकता है, वह करवटें बदल रहा है, उसके मन में क्रोध घना होता जा रहा है। और ऊपर आकाश दिखाई पड़ रहा है, बिजली चमक रही है, पानी की बूंदें पड़ने लगी हैं, उसका क्रोध घना होता जा रहा है। अगर उसके वश में हो, अभी भगवान मिल जाए, तो उनकी गर्दन दबा दे। सारी प्रार्थनाएं वापस ले लेना चाहता है जो उसने की। और भगवान की जो सारी प्रशंसा की, वह सब तोड़ देना चाहता है। उसका मन बड़े विद्रोह से भर गया है। लेकिन बूढ़ा बढ़ी गहरी शांति में सोया हुआ है। बिजली चमकती है तो उसके चेहरे पर जो प्रकाश आता है उससे लगता है जैसे न मालूम वह किस गहरी नींद में है। शायद नींद में नहीं, वह समाधि में है। शायद वह किसी गहरे ध्यान में है। वह न मालूम किन गहराइयों में डूबा हुआ है।
सुबह वे दोनों उठते है। एक तो रात भर नहीं सोया है, दूसरा रास्ता भर सोया है। सुबह उठते ही उस जवान ने फिर गालियां देनी शुरू कर दीं। वह बूढ़ा सुबह उठ कर ही एक गीत लिख रहा है। वह गीत बड़ा प्रसिद्ध है। उस गीत के अर्थ बढ़े अनूठे हैं। उस गीत में वह फिर कहता है कि हे परमात्मा, तू कितना अदभुत है, हमें पता भी नहीं था कि आधे छप्पर में सोने का आनंद क्या है। रात बिजलियां चमकती थीं, तो मेरी रात, तो मेरी नींद भी उनसे आलोकित हो जाती थी। आकाश में तारे दिखाई पड़े, कभी आंख खुली तो तारे दिखाई पड़ गए हैं। नींद में मैंने कभी तारे नहीं देखे थे, और मुझे ख्याल भी न था कि नींद की शांति में तारे कितने प्रीतिपूर्ण मालूम होते हैं और उनसे कैसे संबंध जुड़ जाता है। दिन की रोशनी में, रात के जागरण में देखी थी तेरी प्रकृति, लेकिन नींद के मखमली पर्दे से कभी नहीं झांका था कि तेरी दुनिया इतनी अदभुत है! और अब तो मजा हो जाएगा। वर्षा आ गई है, बूंदें टपकेंगी तेरी, आधे छप्पर में हम सोए भी रहेंगे, आधे छप्पर में तेरे बूंदों का संगीत भी रात भर नाचता रहेगा। और कभी भी आंख खुलेगी, तो हम तेरी बूंदों को देख लेंगे। अगर हमें पता होता कि इतना आनंद है, तो हम तेरी हवाओं को कभी तकलीफ न देते, हम खुद ही आधा छप्पर तोड़ देते, लेकिन हमें यह पता ही नहीं था।
यह एक धार्मिक व्यक्ति की जीवन के प्रति दृष्टि है। न तो आपके मंदिर में जाने से आप धार्मिक होते हैं, न आपके मस्जिद में जाने से आप धार्मिक होते हैं, न आप गीता के चरणों में सिर रखने से धार्मिक होते हैं, और न आप कुरान को सिर पर ढोने से धार्मिक होते हैं, न बुद्ध और महावीर की तस्वीरों के सामने घुटने टेकने से आप धार्मिक होते हैं। धार्मिक आदमी की तस्वीर यह है कि धार्मिक आदमी जीवन के कांटों में फूलों को देखने में समर्थ होता है, जीवन की पीड़ाओं में आनंद को देखने में समर्थ होता है। आधे उड़ गए छप्पर में आधे बचे छप्पर को देखने में समर्थ होता है।
यह धार्मिक क्रांति का तीसरा सूत्र हैः आनंद का, अनुग्रह का, ग्रेटिट्यूड का भाव। यह भाव जितना गहरा और विकसित होता चला जाता है उतना ही जीवन रूपांतरित होता है और उतने ही पदार्थ में उसके दर्शन होने लगते हैं जो पदार्थ नहीं है। और उतने ही पार्थिव में उसकी झलक मिलने लगती है जो अपार्थिव है। फिर सीमाओं में असीम उतरने लगता है और रेखाओं के बीच वह दिखाई पड़ने लगता है जो रेखाओं में बंधता नहीं है। फिर शब्दों में निःशब्द के दर्शन होते हैं और फिर सब ओर, सब ओर, सब दिशाओं में सबके भीतर और सबके बाहर उस एक ही ज्योति फैलनी शुरू हो जाती है, और उस ज्योति में व्यक्ति स्वयं भी लीन हो जाता है और एक हो जाता है। जीवन के साथ यह एकता और लीनता ही

मुक्ति है, जीवन के विरोध में नहीं। जीवन में, जीवन में डूब कर वह उपलब्ध होता है जो प्रभु है।
अंत में फिर दोहरा दूं पहली कड़ीः विश्वास नहीं, अंधापन नहीं; विचार। दूसरी कड़ीः ज्ञान नहीं, थोथा ज्ञान नहीं, शब्दों और शास्त्रों से सीखा ज्ञान नहीं बल्कि विस्मय-विमुग्धता।
और तीसरी बातः जीवन की असारता, दुख का भाव नहीं, निराशा नहीं, उदासी नहीं, अंधकार नहीं; आनंद की भाव-दशा, अनुग्रह का भाव, धन्यवाद, कृतज्ञता मनुष्य के जीवन में क्रांति लाती है और प्रभु के मंदिर के द्वार पर उसे खड़ा कर देती है।
प्रभु करे, हम सभी प्रभु के मंदिर में पहुंच जाएं। प्रभु करे, हम पत्थर तोड़ने वाले मजदूर न हों। प्रभु करे, हम रोटी कमाने वाले मजदूर न हों। प्रभु करे, हम प्रभु के मंदिर बनाने वाले कारीगर हो जाएं।

मेरी इन बातों को तीन दिन तक इतनी शांति, इतने प्रेम से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं।
मेरे प्रणाम स्वीकार करें।